(७३)

तूलिका

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

उत्तमोत्तम उपन्यास और कहानियाँ

रंगभूमि (दो भाग)	४), ६)	अबला	१), १॥)
बहता हुआ फूल	२॥), ३)	मधुपर्क	१॥), २)
हृदय की परख	१), १॥)	मा (दो भाग)	३), ४।)
चित्रशाला (दो भाग)	३।), ४।)	कर्म-मार्ग	१॥), २)
हृदय की प्यास	१॥), २)	पाप की ओर	१), १॥)
मिस्टर व्यास की कथा	२॥), ३)	अप्सरा	१), १॥)
नंदन-निकुंज	॥), १)	गिरिबाला	१), १॥)
प्रेम-प्रसून (प्रेमचंद)	१=), १॥=)	कर्म-फल	१॥), २।)
प्रेम-पंचमी ,,	॥), १)	विकास (दो भाग)	४), ४॥)
प्रेम-द्वादशी ,,	१), १॥)	अश्रुपात	१), १॥)
प्रेम-गंगा ,,	१), १॥)	जासूस की डाली	१॥), २)
गढ़-कुंडार	२॥), ३)	विचित्र योगी	१), १॥)
संन्यासी	१), १॥)	पवित्र पापी	३), ३॥)
पतन	१॥), २)	गोरी	१), १॥)
अब सूर्योदय होगा	१), १॥)	मृत्युंजय	॥), १)
विदा	२॥), ३)	मंगल-प्रभात	४)
भाई	१), १।)	विवाहित प्रेम	१॥)
प्रेम-परीक्षा	॥=), १=)	सुशीला विधवा	१)
सीधे पंडित	१।)	पतितोद्धार	१)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का तिहत्तरवाँ पुष्प

तूलिका

लेखक
श्रीविनोदशंकर व्यास
(अशांत, नवपल्लव, कहानी-कला आदि के रचयिता)

अंकित कर क्षितिज-पटी पर "तूलिका" बरौनी तेरी,
कितने घायल हृदयों को बन जाती चतुर चितेरी।

—प्रसाद

मिलने का पता
गंगा-ग्रंथागार
३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द १॥)], सं० १९९४ वि० [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

गुरुवर

बाबू जयशंकरप्रसादजी

के

कर-कमलों

मे

सादर

—विनोद

अपनी बात

विदग्ध हृदय सुख और दुख के आघात-प्रतिघातों से, या यों कहो कि अपने खेल-कूद से थककर विश्राम के लिये, या कुतूहल के लिये, कहीं लुकना-छिपना चाहता है। तुम कहोगे कि डर से। और, कहानी-लेखक कह सकता है कि मन बहलाने के लिये, विश्राम के लिये, उसे एक छाया की आवश्यकता है।

जीवन के सुख-दुख के अगणित क्षणों की व्याकुल गिनती करके लाभ ही होगा? —इसे कोई शपथ लेकर नहीं कह सकता, तो भी कहने-सुनने में आनंद मिलता है, मज़ा आता है।

कुछ लोग, सरल बालकों के समान कहानी-लेखक से जानना चाहते हैं---"हाँ, तो उस राजा ने तीन रानी से क्यों ब्याह किया?" "और उसकी जीवनचर्या कैसी थी? क्योंकर निर्भरता थी?" एक-एक पल का लेखा माँगने लगते हैं।

देंगे कोई इसका ब्यौरा। मैं तो उसी क्षण, उसी पल का उल्लेख करने में सुखी होता हूँ, जब, किसी रहस्य की छाया में, सुख-दुख की हँसी और रोने में विश्राम देने का प्रयत्न किसी अस्तित्व ने कभी किया है। चाहे वह छायात्मक ही क्यों न हो।

विनोदशंकर व्यास

प्रस्तावना

तूलिका लेकर चतुर चित्रकार जब चित्रपट के सामने बैठता है, तो उसके मृदुल मस्तिष्क में रमणीय भावों की सरल तरंगें लहराने लगती हैं—उसके कमनीय कल्पना-जगत् में सौंदर्य और आनंद, प्रेम और माधुर्य हिल-मिलकर थिरकने लगते हैं—सृष्टि-रहस्य के अंतरतम प्रदेश में प्रवेश करनेवाले उसके ललाम लोचनों के गवाक्षरंध्र से सुषमा और शांति झाँकने लगती है—सहृदयता उसकी सुकुमार उँगलियों में सुकोमल कंपन भर जाती है—रसज्ञता और भावुकता उसकी तूलिका के कमल-कलिकोपम मुख को चूम जाती है—उसका बाह्यज्ञानशून्य स्थूल शरीर अपने आसन पर ही स्थिर

रह जाता है, और उसका तरुण-ध्यान-तल्लीन सूक्ष्म शरीर चित्रपट पर चला जाता है। उसके चित्रपट में उसके चित्रपट का आदर्श मिल जाता है। इधर प्यालियों का रंग चाटकर तूलिका तृप्त होती है, उधर वह भी अपने मुकुरोज्ज्वल मानस-पट पर प्रतिबिंबित प्रतिमा को सामने के चित्रपट पर प्रत्यक्ष देखकर तृप्त हो जाता है।

तादृश तृप्ति "तूलिका"-लेखक ने भी प्राप्त की है। कारण, इसमें उन्होंने आत्मानुभूति का प्रकृत चित्र अंकित किया है। और, यद्यपि वह स्वयं इसके अंकित करनेवाले हैं, किंतु मैं समझता हूँ कि इस पर सबसे अधिक उन्हीं का हृदय मुग्ध होगा। जब भावुक चित्रकार अपनी ही कृति की कांति पर स्वयं मुग्ध हो जाता है, तो उसके चित्र की अनिंद्य सुंदरता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

वह बड़ा ही सुभग-सुहावना दिन था---प्रकृति शांत, वायु शीतल-मंद, संध्या निर्मल, आकाश प्रसन्न, दिशाएँ मधुर---जिस दिन पहले-पहल इसके लेखक 'व्यासजी' ने अपने घर पर इसकी चौथी कहानी मुझे सुनाई थी, मैंने उसे बार-बार उन्हीं से पढ़वाकर सुना; क्योंकि पढ़ने के समय की उनकी भावभंगी उस कहानी की भाषा में जान डाले देती थी। उनकी वह भाव-विन्यासानुकूल शब्दोच्चारण-शैली---वह हृदयोद्भूत दीर्घ निःश्वास---वह भावोच्छ्वास रुद्ध कंठ--वह स्वाभाविक स्वरभंगिमा---क्या बताऊँ, सचमुच कहानी के वाक्यों में जादू भर देती थी।

जिस समय उन्होंने पढ़ा--

"बहुत समय व्यतीत हो गया था। वही घर था। उसने ध्यान से देखा। बहुत देर तक देखता रहा। किंतु कुछ नहीं दिखलाई दिया। वह चुपचाप वहीं बैठकर वंशी बजाने लगा। खूब बजाया। बहुत-से लोग सुनने के लिये एकत्र हो गए थे। किंतु उस घर में कोई नहीं था। किसी ने उसे योगी समझकर नमस्कार किया, किसी ने

साधु समझकर भक्ति प्रकट की । किन्तु उसे समझनेवाला कोई नहीं था । वह केवल वंशी थी ।"

[वंशीवाला—पृष्ठ ५८]

—मैं मौन होकर उनकी तरफ़ देखता रह गया !

फिर बाद को जब-जब मैं व्यासजी के घर पर जाता, वह मुझे 'तूलिका' की एक कहानी अवश्य सुनाते । इस प्रकार, प्रकाशित होने से पूर्व ही, मैं इस पुस्तक की सभी कहानियों का रसास्वादन कर चुका था । इन कहानियों को सुनने से पहले भी—निरंतर काशी में रहने के कारण—व्यासजी से मेरी घनिष्ठता अवश्य थी; पर कहानियाँ सुनने के बाद मेरी दृष्टि में वह कुछ और ही हो गए, वह हृदय-तल के बहुत पास चले आए ।

कई कहानियों में मुझे स्वाभाविकता का अंश बहुत अधिक देख पड़ा । मैंने व्यासजी से उनका मिलान किया । तब उनका रस और भी बढ़ गया । जान पड़ा, व्यासजी की मनोवैज्ञानिक शक्ति बड़ी तीव्र है ।

वास्तव में व्यासजी का अध्ययन करने के बाद कहानियों ने हृदय को बड़ी ही मार्मिकता से स्पर्श किया । मैंने एक बार व्यासजी की ओर देखा, फिर कहानियों की ओर । दोनों दूध-मिश्री-से घुले-मिले दीख पड़े ।

'तूलिका' की कहानियों में एक ऐसा विलक्षण संसार रम रहा है, जिसके अंदर पैठने से बड़े अजीब दृश्य नज़र आते हैं । कहीं हताश हृदय अपनी अधीरता के पंख समेटकर आहें भर रहा है । कहीं कुटिल सामाजिक बंधन से जकड़े हुए प्रेमाकुल हृदय अपनी सारी व्यथा को ख़ून के घूँट की तरह पीकर सिसकियाँ ले रहे हैं । कहीं प्रेमोन्माद आकाश की ओर कातर दृष्टियों से देखता हुआ शांति की भिक्षा माँग रहा है । कहीं विरक्ति—पलकों की झोली पसारकर—

अपने अंतर-पट में हाहाकार छिपाए हुए विश्व-विस्मृत एकांत की ओर, शिथिल गति से, जा रही है। एक तरफ़ हृदय की तलफती रेत वासना के ज्वार को सोख रही है, दूसरी तरफ़ लालसा की चिता धधक रही है। इस प्रकार यह पूरी पुस्तक मनस्तापों की धूनी रमाए बैठी है।

लेखक ने जहां दरिद्रता का चित्र अंकित किया है, वहाँ सहानुभूति-शलाका को आकृष्ट करने के लिये चुंबक-दंड स्थापित कर दिया है। जहाँ प्राकृतिक शोभा का चित्रण किया है, प्रकृति नटी की रंगशाला में सजीव छवि की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी है—जहाँ छेड़खानियों और चुहलबाज़ियों पर रंगसाज़ी की है, वहाँ अपनी विनोदप्रियता और मस्ती की सहज सलोनी झाँकी दिखाकर मुग्ध कर दिया है। मुझे विश्वास है कि कोई साहित्यानुरागी इस पुस्तक की साहित्यिक छटा पर लट्टू हुए बिना न रहेगा। तथास्तु।

शिवपूजनसहाय

सूची

करुणा

एक दृश्य —

अंधकार का चारों तरफ राज्य था। एक पहर रात ढल चुकी थी। आकाश के अंचल में तारे जगमगा रहे थे। चन्द्रदेव दूसरे देश में भ्रमण कर रहे थे! उस पतली-सी गली में कोई किसी को देख न सकता था, कभी-कभी तो ऐसा हो जाता कि अंधकार के कारण, एक दूसरे मनुष्य की टक्कर लड़ जाती। कूड़ा जगह-जगह फैला था, सफाई कुछ भी न थी। उसी गली में एक पुराना मकान था। देखने से यह ज्ञात होता था कि अब की वर्षा-ऋतु में यह मकान खड़ा न रह सकेगा। उसी मकान की एक कोठरी में एक दीपक जल रहा था। उसमें कुछ

सामान भी नहीं दिखाई देता था, केवल कुछ मिट्टी के बरतन पड़े थे, और एक रोगिणी शय्या पर पड़ी थी। रोग के कारण उसका शरीर पीला हो गया था। शरीर में हड्डी-हड्डी निकल आई थी। उस दीपक के मंद-मंद प्रकाश में उस रोगिणी की गढ़े में धँसी हुई आँखें डबडबा रही थीं।

एक नन्हा-सा बच्चा उसके वक्षःस्थल में छिपा हुआ दूध पी रहा था। रोगिणी बार-बार उसकी तरफ देखती, उसके नेत्रों से आँसू की धार बह रही थी। वे आँसू-कण अपने मार्ग में खिसककर, बच्चे के गाल पर टपक रहे थे। वह नन्हा-सा बच्चा अपनी मा की तरफ देख रहा था, और माता उसकी तरफ देख रही थी। बच्चे ने अपने छोटे-छोटे हाथों को ऊपर उठाते हुए कहा—"म . माँ आँ..." माता ने उसे चूम लिया। उसके सिर पर हाथ थपथपाते हुए उसने कहा—"बेटा, सो जाओ।" रोगिणी की दशा पहले से अब कुछ अच्छी हो चली थी।

। परिचय—

वह एक वेश्या थी, पतिता थी, और समाज से निकाली हुई अभागिनी थी। उसकी रूप की दूकान थी, और दूकान भी ऐसी, जो न चलती हो। कुछ धन भी एकत्र न कर सकी। रूप भी नष्ट हो गया। दूकान टूट गई। एक बालक हुआ,

तभी से वह बीमार पड़ी। कई मास तक वह रोग-ग्रस्त थी। पेट के लिये घर का सब सामान बिक चुका था। ग्राहक भी नहीं आते थे।

और सहायक भी कोई नहीं था। फिर भी दुखिया रो-रोकर अपने दिन काटती थी। उसे केवल अपने तन की तो चिंता नहीं थी। उसका एक बालक भी था। सबसे अधिक चिंता उसे अपने बच्चे की होती। उसे दूध तक न मिलता था। दुखिया के स्तन में इतना दूध होता नहीं था, जिससे उसका पालन होता। उस दुखिया का नाम था—करुणा!

कई दिन बाद—···

करुणा ने देखा, अब बच्चे का जीवन-निर्वाह करना उसके लिये बड़ा कठिन है। इस तरह तो एक दिन उसकी मृत्यु हो जायगी। उसने अपने मन में कहा—"यदि मैं अपना बच्चा किसी को दे दूँ, और वह इसे अच्छी तरह रक्खे। किंतु एक वेश्या के बच्चे को कौन रक्खेगा—लोग घृणा करेंगे।" अंत में उसने निश्चय किया कि रात्रि के समय बालक को मार्ग में रख दूँगी। कोई-न-कोई उसे उठा ले जायगा, और उसका पालन-पोषण करेगा। उसने मोह को अपने हृदय से हटा दिया।

अभी दो घड़ी रात बाकी थी। करुणा उठी, बालक को

उसने गोद में ले लिया। फटे वस्त्रों से उसने लपेट लिया और घर से वह निकल पड़ी। बार-बार घूमकर देख रही थी कि उसे कोई देख तो नहीं रहा है। करुणा के हाथ में बालक के खेलने का एक शीशे का खिलौना था। बालक का बोझ वह रुग्णावस्था के कारण सँभाल न सकती थी। चलते चलते वह सड़क पर आई। अभी पूर्व दिशा में लाली नहीं छाई थी, फिर भी सवेरा होने ही वाला था।

करुणा ने एक स्थान पर बालक को रख दिया। उस समय वह अश्रुपात कर रही थी। वह सोचती, अब बच्चे को इस जीवन में देख सकूँगी, या नहीं। बार-बार वह बच्चे की तरफ देखती। वसंत का पवन आकर करुणा को स्पर्श करता।

उसकी आत्मा कहती—"जो कुछ तुम्हारे पास है, वायु के साथ लुटा दो।" उसने अपने हृदय को कठोर किया। कष्ट सहते-सहते वह कठोर हो चली थी। किंतु फिर भी वह माता का हृदय था।

करुणा ने बालक को चूम लिया। उसने कहा—"मोहन, आज अंतिम विदाई है, अब तुम अपनी मा से अलग हो रहे हो। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।" यह कहती हुई वह उन्मादिनी की तरह चली जा रही थी। मोहन के रोने की ध्वनि उसके कानों में गूँज रही थी। उसके हाथ में मोहन के खेलने का

तूलिका



करुणा ने बालक को चूम लिया। उसने कहा—"मोहन, आज अंतिम बिदाई है, …।"

गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

एक खिलौना था, किंतु खेलनेवाला न था। करुणा अपने घर की तरफ़ न जाकर किसी दूसरी तरफ़ ही चली गई।

अनाथ मोहन—

मंदिर में घंटा बज रहा था। स्वर्णमयी उषा का क्षितिज आगमन हुआ था। गंगा-स्नान करने के लिये लोग घर से निकल रहे थे। एक रमणी भी अपनी दासी के साथ स्नान करने के लिये जा रही थी।

"हाय! यह क्या!! यह बच्चा यहाँ किसका रो रहा है?"—रमणी ने आश्चर्य से कहा। दासी ने जाकर देखा, उसने उसे अपनी गोद में उठा लिया, और कहा—"बहूजी, बच्चा तो बड़ा सुंदर है, किसी ने यहाँ रख दिया है। हाय, उसे जरा भी मोह न था।" बहूजी ने कहा—"अच्छा, इसे घर ले चल।"

बहूजी की जवानी ढल चुकी थी। संतान कोई उत्पन्न नहीं हुई थी। पति बड़े व्यवसायी थे, घर में लक्ष्मी का निवास था। वह बालक घर में अब सबका खिलौना हो गया। बड़े लाड़-प्यार से उसके दिन बीतने लगे। बहूमा को ही वह अपनी माता समझता था।

माता की व्यथा—

स्मृति काँटों की शय्या है। करुणा रोती है, कभी हँसती है। रोती है वह मोहन के लिये, और हँसती है अपने जीवन

पर। पथ-पथ में वह फिरती है। कितनी रजनी उसकी सड़कों पर कटी हैं। अब न उसका घर था और न कोई साथी। सब कुछ छोड़ चुकी थी, और छोड़ चुकी थी अपने जीवन की अमूल्य संपत्ति मोहन को! वह विकल होकर इधर-उधर फिरा करती। पगली समझकर कोई उसको खाने को दो रोटियाँ दे देता। इसी तरह वह अपना जीवन काटती रही।

करुणा जब किसी बालक को खेलते हुए देखती, तो उसे मोहन की स्मृति आ जाती। वह बार-बार उस खिलौने को देखकर रोती; क्योंकि मोहन की स्मृति के लिये केवल उसका खिलौना ही करुणा के पास था। वह उसे हृदय से लगा लेती और समझती, यही हमारा मोहन है। उसका दिमाग खराब हो चुका था। उसे न अपने भोजन की चिंता थी और न कपड़े की। यदि कोई दे देता, तो उसे वह ले लेती। मार्ग में चलता हुआ कोई उसके सामने एक पैसा फेंक देता, तो करुणा घृणा से उसे फेंक देती। लोग समझते, यह पगली है।

एक दिन करुणा को देखकर एक आदमी ने कहा—"अरे, यह तो वही वेश्या है!" दूसरे ने कहा—"जैसा किया था, उसी का फल भोग रही है—बुरे कर्म का बुरा परिणाम!"

किंतु करुणा के साथ कोई सहानुभूति प्रकट करनेवाला न था। समाज उसका तिरस्कार करता था। वह विकल होकर

कहती—"अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते। हाय ! मैं क्या करूँ ? मोहन ! प्यारे मोहन !! आ जा मेरी गोद में।"

दो वर्ष बाद—

वर्षा-ऋतु के काले बादल अब सफ़ेद और पतले हो चले थे। सफ़ेद बादल आकाश में टकरा रहे थे। सूर्यदेव उन बादलों पर चित्रकारी कर रहे थे। एक बड़ा सुंदर-सा मकान था। उस मकान के सामने एक वाटिका थी। एक बालक ने कहा—"गिलआली ! ए गिलआली !! वह तितली मुझे पकड़ दो।"

"क्या करोगे ?"

"उसे रखूँगा।"

"नहीं, वह मर जायगी।"

"मैं उसे दिला दूँगा।"

"मैं उसे नहीं पकड़ सकता, वह उड़ जायगी।"

बालक उसे पकड़ने चला, तितली उड़ गई। वह उसकी तरफ़ देखने लगा। फिर वह अपने रबड़ के गेंद को उछाल-उछाल-कर खेलने लगा।

एक भिखारिन बहुत देर से वहाँ खड़ी देख रही थी। आज भूले-भटके सहसा वह इधर आ गई थी। वह चुपचाप देख रही थी—"आह, यह तो मेरे मोहन की तरह है ! आँखें वैसी ही हैं—रंग भी कुछ साँवला-सा है। गोल मुँह भी है। एक

दिन चारपाई पर से गिरने पर उसके जो चोट आई थी, उसका चिह्न अब तक मस्तक पर बना है। अवस्था भी इसकी उतनी ही है। एक वर्ष का था—दो वर्ष बीते। तीन वर्ष का तो यह बालक भी मालूम पड़ता है। यही है मेरा मोहन।" इन्हीं वाक्यों को करुणा भुनभुना रही थी। प्रेम से उसका हृदय उमड़ रहा था। मोती का हार टूट गया था, दाने एक-एक करके भूमि पर गिर रहे थे।

गेंद उछलते-उछलते करुणा के पास आ गया। बालक उसे लेने के लिये दौड़ा। करुणा उसकी तरफ देख रही थी। उसने धीरे से कहा—"मोहन, भूल गए क्या ?"

मोहन ने कहा—"तुम भीख माँगती हो ? क्या पैसा लादूँ ?"

"नहीं ?"

"तब क्या ?"

"अपने बच्चे को खोजती हूँ।"

"वह कहाँ है ?"

"तुम हो।"

मोहन हँस दिया। उसने कहा—"मैं अपनी अम्मा का बच्चा हूँ, तुम्हारा नहीं।"

करुणा ने अपने वक्षःस्थल में छिपा हुआ एक खिलौना निकालकर कहा—"लो, यह तुम्हारा खिलौना है।" वह अपने



"दूर हो यहाँ से !" यह कहते हुए बालक को उसने उठा लिया ।

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

को अब सँभाल न सकी। मोहन को गोद में लेकर रोने लगी। उधर नौकर ने जब देखा कि एक भिखारिन की गोद में मोहन है, तो वह भिखारिन के सामने आ गया, और कहा—"दूर हो यहाँ से!" यह कहते हुए बालक को उसने उठा लिया।

करुणा चुप हो गई, वह देखने लगी। उसने अपने मन में विचार किया कि इस समय यदि मैं कहती हूँ कि यह मेरा बालक है, तो कोई विश्वास ही न करेगा। और यदि विश्वास हो भी गया, तो मोहन सबकी दृष्टि में गिर जायगा। लोग समझेंगे, एक वेश्या, एक भिखारिन का पुत्र है। उसका जीवन नष्ट हो जायगा। वह विकल होकर रोने लगी।

नौकर गिरधारी ने पूछा—"क्यों रोती है? भूखी है क्या?"

ऊपर से बहूजी ने कहा—"अरे, उसे कुछ खाने को दे दो।"

परंतु करुणा वहाँ से उठी, उसके पास मोहन की स्मृति के लिये जो खिलौना था, वह भी उसने वहाँ छोड़ दिया। वह दौड़ती हुई चली जा रही थी। आज उसके मुख पर करुणा और संतोष था।

गिरधारी ने कहा—"बहूजी! वह तो पागल हो गई है।"

उस दिन से फिर करुणा को किसी ने नहीं देखा, न-जाने कहाँ चली गई।

प्रमदा

१

उसका नाम था—प्रमदा।

मैं पुकारता—प्रमदा, आओ।

वह कहती—अभी आती हूँ गोपाल !

वह आती और हम लोगों का खेल आरंभ हो जाता। उस समय मेरी अवस्था दस वर्ष की थी, प्रमदा मुझसे दो वर्ष छोटी थी।

सायंकाल के समय मुझे पढ़ाने के लिये मास्टर आते थे। कभी-कभी वह देर में छुट्टी देते। उस समय प्रमदा व्याकुल होकर मेरे द्वार पर से मुझे बार-बार देखती। मैं भी खेलने के

लिये चंचल हो उठता, और पढ़ने में तनिक भी मन न लगता। इसी अपराध के लिये मुझे कभी-कभी मार खानी पड़ती थी।

खेल के समय पड़ोस के सब लड़के एकत्र हो जाते थे। हम लोग कभी गेंद लेकर खेलते और कभी 'चोर-चोर' खेलते, उसमें प्रायः प्रमदा ही चोर रहती, और वह खेल में सफल भी न होने पाती। अतएव उसके बदले मैं ही उसका स्थान ले लेता।

बात-बात में हम लोग आपस में लड़ते थे। कभी प्रमदा से लड़ाई होती और कई दिनों तक बोल-चाल न होती। फिर प्रमदा आती और मेल हो जाता।

इसी तरह दो वर्ष बीत चुके थे। मैं भी स्कूल में पढ़ने जाता था, और प्रमदा भी बाहर खेलने के लिये निकलने न पाती थी। जब कभी वह मेरे घर पर आती, तब हम दोनों बैठकर ताश खेलते थे। उस समय और तो कोई खेल नहीं आता था; हाँ, रंगमार खेलना आता था। अथवा ताश की गड्डी लेकर हम दोनो बैठ जाते। वह ताशों का मकान बनाती और मैं भी। जिसका मकान ऊँचा बनता, वही जीतता था। मैं आँख बचाकर प्रायः फूँककर उसका घर गिरा देता और कहता—देखा, हवा से तुम्हारा मकान गिर गया। वह बेचारी फिर से अपना मकान बनाती। यही हम दोनो के मन-बहलाव का एक साधन था। प्रमदा के बिना मेरा मन न लगता।

मैं पुकारता—प्रमदा, आती हो?

प्रमदा कहती—गोपाल, अम्मा नहीं आने देती हैं। अभी घर का काम करना है। मैं निराश हो जाता और घर में आकर चुपचाप बैठ जाता।

❀ ❀ ❀

अब प्रमदा १२ वर्ष की हो चुकी थी। वह मुझसे बहुत कम बोलती। कारण, उसके घरवाले इसे पसंद न करते थे। अतएव अब मेरा मन बहलना कठिन था।

लड़कपन की सब बातें भी बदली जा रही थीं। लज्जा, संकोच और विवेक ने हृदय में प्रवेश किया। मेरे सब साथी मिलते, किंतु प्रमदा न आती, इसका बड़ा दुःख होता। धीरे-धीरे हम लोगों के सब खेल भी बंद हो गए।

प्रमदा के पिता दफ्तर में नौकरी करते थे। उनकी बदली हो गई। वह दूसरी जगह चले गए। सुना था, उसी साल प्रमदा का विवाह भी होगा।

प्रमदा का फिर कुछ पता न लगा।

दस वर्ष बीत चुके थे। एक दिन प्रमदा का पुराना नौकर कल्लू आया। उसने पूछा—भैया, अच्छे हो? घर में सब कोई मजे में हैं?

मैं कुछ देर तक उसकी तरफ देखता रहा; मगर पहचान गया

कि कल्लू है। मैंने कहा—तुम कैसे आए कल्लू ? क्या बाबू के यहाँ की नौकरी छोड़ दी ?

उसने कहा—नहीं भैया, वहीं हूँ। उन्हीं लोगों के साथ आया हूँ।

मैंन कहा—प्रमदा कैसी है ? क्या वह भी आई है ? कल्लू ने कहा—वहाँ सबके साथ यात्रा करने आई हैं। उनका विवाह दिल्ली में हुआ। अब तो लड़के भी हैं, एक पाँच वर्ष का है और दूसरा तीन वर्ष का।

मैंने कहा—अब वे खेलने के दिन गए ?

कल्लू ने कहा—भैया, चलो, एक बार भेंट कर लो न।

उस दिन से मैं प्रायः धर्मशाला में भेंट करने जाता। प्रमदा के पति बड़े स्वच्छ हृदय के, मिलनसार आदमी थे।

२

मैंने कहा—सुनो।

उसने कहा—क्या ?

मैंने कहा—जरा यहाँ आओ।

उसने कहा—अभी काम है।

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

उसने कहा—मत .... हाँ .....एँ !

मैंने कहा---एक बड़ी जरूरी बात कहनी है।

उसने कहा—आखिर कहो भी तो।

मैंने कहा—तुम्हारी नाक में नथ बड़ी सुंदर लगती है।

न-जाने क्यों उस दिन मैं बड़ा उदास था। अपने को बह-लाने की बड़ी चेष्टा कर रहा था।

उसने कृत्रिम हँसी हँसकर कुछ शर्माते हुए कहा—तुम्हारी बात बस यही है? अच्छा, अब मैं इसे न पहनूँगी।

उसने उसी समय संदूक में से नाक की कील ढूँढ़ निकाली और उसे पहनकर उसने कहा—देखो, अब यह तो हुआ तुम्हारे मन का फैशन? वह मुसकिरा रही थी।

मैंने उन्मत्त के समान देखते हुए कहा—तुम्हें इसी तरह दिन-रात देखते रहने की बड़ी इच्छा होती है। अपनी झेंप मिटाने के लिये उसने पुकारा—विलास!

आवाज आई—हाँ!

मैं आपे में आ गया। बालक विलास दौड़ता हुआ आया। उसके हाथ में एक गेंद था। मैंने विलास को गोद में लेकर चूम लिया। पूर्व काल की स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं। मैं भी कभी बालक था! कितना सुखी था! आह, वह जीवन सदैव बना रहता, तो संसार स्वर्ग बन जाता।

* * *

सूर्यदेव की किरणें आकाश में पूर्ण रूप से बिखर चुकी थीं। मैं धर्मशाला के कमरे में बैठा हुआ विचारों में लीन था। कभी हँसता, कभी गाता और कभी रोता था।

वह स्नान करके उठी थी। मेरे सामने आई। मैं एकटक उसकी तरफ़ देखने लगा।

उसने पूछा—क्या सोच रहे हो? इतने उदास क्यों हो?

मैंने कहा—कुछ नहीं, यों ही।

उसने कहा—भला कुछ तो—बतलाते क्यों नहीं?

मेरे नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह चली। वह अपने आँचल से पोंछने लगी।

उसने कहा—किसलिये रोते हो? मेरे लिये! पुरुष होकर रोते हो! तुम्हें तो मुझे धैर्य देना चाहिए, सो......! इतना कहते-कहते वह भी रो पड़ी। उसकी सिसकी बँध गई। मैं अपने रूमाल से आँखें पोंछने लगा।

उसने कहा—हम लोगों के लिये यह सब याद करने पर केवल स्वप्न की-सी बातें मालूम देंगी।

मैंने कहा—संयोग था।

दूसरे दिन प्रमदा सबके साथ चली गई।

जीवन के अंत में मृत्यु है, सुख के बाद दुःख है, दुःख के बाद सुख है। प्रेम में सुख भी है और दुःख भी। मिलन के

बाद वियोग है, वह भी सुख है, मान लेने पर दुःख भी है।

अब मेरे भी वियोग के दिन थे।

जब अस्ताचल पर जाते हुए सूर्यदेव की सुनहली किरणें आकाश से बिदा माँगतीं, पक्षियों का कलरव सुन पड़ता, एक के बाद एक क़तार बाँधकर जब सब अपने बसेरे की ओर लौटते, वृक्षों पर धीरे-धीरे अंधकार छा जाता, प्रकृति सुनसान हो जाती, आकाश में दो-चार तारे दिखलाई देते, चंद्रदेव का क्षितिज में प्रवेश होता और हँसती हुई चाँदनी गंगा की लहरों से कल्लोल करती, तब मैं उसके एक तट पर अपनी छिन्न अंतर्वीणा लेकर बैठ जाता और रो-रोकर अतीत की स्मृतियों की रागिनी गाने लगता। न किसी से बात करता और न किसी से मिलता। मैं एकांतप्रिय हो गया था। चुपचाप बैठा हुआ मैं कभी घंटों आकाश के तारों की ओर ही देखता रह जाता, और कभी गंगा की लहरों की ओर। बस, यही मेरी दिनचर्या थी।

लोग मुझे पागल समझते; किंतु इस पागलपन को वही जान सकता है, जिसने कभी प्रेम-गंगा में डुबकी लगाई हो!

शय्या पर

१

वृद्ध ने अपने जीर्ण हाथों को ऊपर उठाकर कहा—प्रभु, मुझे एक बार फिर नीरोग कर दो। मैं अपने पौत्र का मुख तो देख लूँ।

कहकर उसने एक लंबी साँस खींची।

२

वृद्ध नीरोग हो गया था।

दिन-पर-दिन बीतने लगे।

एक दिन उसने सुना, घर में पौत्र ने जन्म लिया है।

उसकी आँखों में हर्ष के बादल उमड़ पड़े, मन-मयूर नाच उठा।

३

इस समय पौत्र की अवस्था ३ वर्ष की थी।

वृद्ध एक क्षण के लिये भी उसे अपनी आँखों से ओझल न होने देता था। वह उसे कभी जंगली चिड़ियों का हाल सुनाता, कभी हृदय को गुदगुदा देनेवाली कहानियाँ सुनाता और कभी अपने बचपन के गाए हुए गीतों को चुटकियाँ बजा-बजाकर गुनगुनाता।

अबोध शिशु दादा की बातें सुन-सुनकर प्रसन्न होता, और कभी-कभी खिलखिलाकर हँस पड़ता। उसे हँसते देखकर वृद्ध की आँखों से हर्ष की दो बूँदे टपक पड़तीं।

बालक विस्मित होकर पूछता—ये गोल-गोल बूँदें कहाँ से आईं दादा?

वृद्ध कुछ उत्तर न दे पाता। उसकी आँखों से कुछ बूँदें और टपक पड़तीं।

४

एक वर्ष बीत गया।

छोटी-सी टूटी हुई चारपाई पर एक दिन फिर कराहते हुए वृद्ध दिखाई पड़ा।

उसकी आँखें बाढ़ में डूबी हुई थीं। गला रुँधा हुआ था। एक शिथिल वीणा की भाँति उसका सूखा कंकाल शय्या पर

पड़ा हुआ था। बालक उसके बगल में बैठा हुआ कह रहा था—दादा, आज कोई गीत न सुनाओगे ?

वृद्ध ने एक बार फिर अपने दोनो सूखे हाथ को ऊपर उठाकर कहा—हे प्रभु, यह मेरी अंतिम आकांक्षा है—जब तक मैं अपने पौत्र का विवाह न देख लूँ, मेरे ये प्राण अपने पंखों को समेटे रहें।

किंतु एक दिन अँधेरी रात में वृद्ध के प्राणों ने अपने पंखों को फैला दिया। उस समय उसके मुख से सुना गया—"हरे राम, हरे राम !"

बालक मचलकर कहने लगा—"बाबा, आज तुम अच्छा गीत नहीं गा रहे हो। सुंदर गीत गाओ बाबा !"

वंशावीला

"अब वंशी न बजाऊँगा" यह उसने प्रतिज्ञा कर ली थी। पहले वह बड़ी कुशलता से वंशी बजा लेता था। उसके बजाने में उसकी आँखों के सामने कल्पना का संसार दिखता था। उस ध्वनि में दर्द था, उसमें सम्मोहन था। वंशी बजाकर ही शायद वह अपनी आंतरिक पीड़ा को शांत करता था।

उस घटना को भी ५ वर्ष हो गए थे। वह निर्जन स्थान में इधर-उधर शांति के लिये भटकता रहा।

उसने समझा था कि यह पीड़ा वंशी के कारण ही उत्पन्न होती है। अब वह भी नहीं बजाऊँगा। घर छूट गया था। बहुत समय चला गया। उसके घुँघराले बालों ने बढ़कर जटा

का रूप धारण कर लिया था। उसकी जादू-भरी सफ़ेद आँखों ने धँसकर अपने चारो तरफ़ काली रेखाएँ बना ली थीं।

वह योगी नहीं था, महात्मा नहीं था और दार्शनिक भी नहीं था। फिर क्या था? हाँ, उसे प्रेम का उन्माद था। संसार की घटनाओं से वह हताश हो गया। प्रेम के कलंक का टीका उसके मस्तक पर लग चुका था। संसार ने उसकी ओर चकित होकर देखा था। उसी दिन उसे अपनी अवस्था पर ध्यान हुआ। वह रोया, फूटकर रोया, और जी भरकर रोया। उस रोने में बड़ा स्वाद था।

उसी दिन से वह अपना घर छोड़कर चला गया था। तभी से वंशी बजाने लगा। वंशी उसके प्रेम का गान करती थी, और उसकी प्रतिध्वनि उसे सांत्वना देती थी।

वंशी उसकी दिनचर्या को समाप्त करती थी; किंतु आधी-रात का चंद्रमंडल और तारे उसे प्रेम-पथ को भूल जाने का आदेश दिया करते थे।

उस दिन ऊषा की लाली के साथ ही उसके प्रियतम का उसे दर्शन हुआ था। वह अवाक् रह गया, भयभीत हो उठा था। वह न देखने की चेष्टा करने लगा। किंतु आँखों को वश में न कर सका। वह मचल गया। हृदय की व्याकुलता के कारण वंशी की ध्वनि बेसुरी होने लगी। वह उठा और

चला गया। अपने प्रणय-पात्र को भूल जाने के लिये ही उसने वंशी न बजाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। वंशी की ध्वनि के साथ उसके सम्मुख जो प्रतिमा प्रत्यक्ष हो जाती थी, वह लोप होने लगी।

उसने समझा, अब मैं विजयी हुआ।

❀ ❀ ❀

उस दिन चंद्रदेव को क्रीड़ा करते हुए देखकर उसने मन-ही-मन कहा—"क्या अब मैं हृदयहीन हो गया? क्या वास्तव में हृदय से प्रेम की भीषण लहरें चली गईं? उस घटना का रेखा-चित्र भी अब मेरी आँखों के सामने नहीं आता। तब तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहा।"

वह उठा। गंभीर होकर विचार करने लगा। उसने रोने की चेष्टा की, किंतु रो नहीं सका। हँसने का उद्योग किया, किंतु हँस भी नहीं सका। फिर गाने का विचार किया, और कुछ गुनगुनाने लगा। वंशी बजाने की कामना उसके हृदय में प्रबल हो उठी। दूसरे दिन वह नगर की ओर लौटा।

फिर उसने वंशी ली, और उसे बजाने लगा। सदा की भाँति वंशी बजाने का उसका नियम हो गया। वंशी की स्वर-लहरी ने उसके मर्मस्थल पर लोप हुए प्रेम को फिर

से जगाया। वह उन्मत्त हो चला। अपने भूले हुए प्रियतम को देखने के लिये उसकी आँखें चंचल हो उठीं।

वंशी केसाथ-साथ उसकी अंतर्वीणा बजने लगी। उसी राग में मस्त होकर वह अपने प्रणय-पात्र को एक बार फिर देखने के लिये चल पड़ा।

वह आया। बहुत समय व्यतीत हो गया था। वही घर था। उसने ध्यान से देखा। बहुत देर तक देखता रहा। किंतु कुछ नहीं दिखलाई दिया। वह चुपचाप वहीं बैठकर वंशी बजाने लगा। खूब बजाया। बहुत-से लोग सुनने के लिये एकत्र हो गए थे। किंतु उस घर में कोई नहीं था। किसी ने उसे योगी समझकर नमस्कार किया, किसी न साधु समझकर भक्ति प्रकट की। किंतु उसे समझनेवाला कोई नहीं था। वह केवल वंशी थी।

निराश होकर उसने पूछा—इस घर में अब कोई नहीं रहता?

किसी ने उत्तर दिया—इस घर के निवासी अब दूसरे प्रांत में चले गए हैं।

वंशीवाले के जीवन के रहस्य को कोई नहीं समझ सका। वह टहलता हुआ आगे बढ़ा। कुछ दूर चला आया, गंगा-

तट पर उसने एक टूटा हुआ शिवाला देखा। उस दिन से वह उसी शिवाले में निवास करने लगा।

सावन-भादों की निचाट रात में अब भी उसकी वंशी कभी-कभी सुनाई पड़ती है।

रधिया

१

पूस का जाड़ा था। चारों ओर अंधकार, कुहरे के धूमिल परदे में आकाश छिपा हुआ था। गंगा के उस पार बादलों का एक देश दिखलाई देता था। चंद्रदेव रजनी के स्नेहांचल में दुबककर सो रहे थे।

गंगा-तट पर वृक्षों के नीचे सैकड़ों भिखारी ठिठुरकर गठरी बने हुए पड़े थे। उनमें कोई लँगड़ा था, कोई लूला। कोई अंधा था तो कोई एकदम हाथ-पाँव-विहीन। कोई सरदी से खाँस रहा था, और कोई दमे से बेहाल था। कोई ज्वराक्रांत था और कोई क्षुधार्त। कहीं से 'आह-आह' सुनाई पड़ती थी,

तो कहीं से चीत्कार और हाहाकार। यहाँ था दुःखमय संसार के सच्चे धनियों का दल !

तट के ऊपर अट्टालिकाएँ आकाश छू रही थीं, जिनमें सुख-मय संसार के धनियों का दल आनंद कर रहा था। कहीं से सितार की मीठी झंकार आ रही थी, तो कहीं से पियानो और हारमोनियम की सुरीली तान। कहीं-कहीं से वंशी की जादू-भरी फूँक श्रोताओं के रोम-रोम में गुदगुदी पैदा कर देती थी। इन वाद्य-यंत्रों की स्वर-लहरी में किसी के सुखमय अतीत का संगीत तरंगित हो रहा था, तो किसी की दर्द-भरी आहें क्रंदन कर रही थीं।

वहीं एक वृद्धा स्त्री पेड़ के नीचे एक छोटी-सी बालिका के साथ विश्राम कर रही थी। चिथड़े ही उसके ओढ़ने और बिछौने थे। वृद्धा अंधी थी, बालिका पर उसकी बड़ी ममता थी—वही उसके जीवन की 'हीरा-मोती' थी।

वृद्धा ने कहा—रधिया, तुझे नींद नहीं आती क्या ? जाड़ा लगता है ; आ, मेरे कलेजे से लगकर सो जा।

रधिया बोली—नहीं नानी ! जाड़ा तो नहीं लगता। एक बात है, आज मुझे चार पैसे एक साथ ही मिल गए थे।

कैसे बच्ची ?

आज एक राजा गंगा-स्नान करने आए थे। उनके साथ

रानी भी थीं। उनकी देह पर नाना प्रकार के रत्न-जटित आभूषण जगमगा रहे थे। उन्हीं के नौकर ने मुझे चार पैसे दिए। अच्छा नानी ! एक बात बताओगी ?

क्या बात है बेटी ?

रानी को इतना गहना कहाँ से मिला नानी ?

उन्हें ईश्वर ने दिया है बेटी।

तो ईश्वर हम लोगों को क्यों नहीं देता ?

ईश्वर ग़रीबों को नहीं देता।

क्यों ?

इसलिये कि फिर तो संसार-भर धनी हो जायगा। तब न ग़रीब रहेंगे, और न दया परोपकार के पुण्य कर्म ही हो पाएँगे।

रधिया की समझ में कुछ नहीं आया। वह बार-बार यही सोचती थी कि रानी के हाथ का कड़ा कितना चमकता था।

बुड्ढा ने कहा—बेटी, अब सो जा। बहुत रात बीत गई।

२

रधिया जब छः वर्ष की थी, तभी उसकी मा इस कोलाहल-मय संसार को छोड़कर चली गई थी। बुड्ढा ने बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर उसे पाला-पोसा, और इतना बड़ा किया। जब वह भीख माँगने जाती, तो साथ में रधिया को भी ले

जाती ; रधिया अंधी के हाथ की लकड़ी थी। उसे पाकर बुढ़िया अपने को बहुत सुखी अनुभव करती थी। इधर रधिया भी दिन-पर-दिन बढ़ रही थी।

* * *

वृद्धा का शरीर जर्जर हो गया था। अब वह भीख माँगने भी न जाती थी—चलने की सामर्थ्य न थी। रधिया जो कुछ माँगकर लाती, उसी में दोनो का निर्वाह होता था। वह बड़े प्रेम से नानी को दिन-भर की कहानी सुनाती थी। एक बालक को जिस तरह अपने प्यारे खिलौने का मोह होता है, उससे कहीं अधिक रधिया को वृद्धा का मोह था।

३

बहुत समय बीत गया।

रधिया अब सयानी हो गई थी।

एक दिन उसने देखा—वृद्धा का शिथिल कंकाल ज्वर की भीषण ज्वाला से धधक रहा है। उसके रोम-रोम से चिन-गारियाँ निकल रही थीं। बेचारी रह-रह कर कराह उठती था।

रधिया ने कहा—नानी, यह बुखार तो तवे की आँच से भी अधिक तेज होता जा रहा है। अच्छा, जाती हूँ। देखूँ जो दूध के लिये कहीं चार पैसे मिल जायँ।

* * *

रधिया दिन-भर राह में भटकती रही। उसे कहीं कुछ न मिला।

उसे जो मिलता, कहता – छिः! इतनी बड़ी लड़की होकर भीख माँगती है। ईश्वर ने हाथ-पैर दिए हैं, जा, कहीं नौकरी कर ले।

अक्सर लोग दिल्लगी भी कर बैठते थे।

अंत में बेचारी मर्माहत होकर लौट आई। अब उसे भीख माँगने में संकोच होता था।

वृद्धा ने टूटे स्वर में कहा—बेटी, आज क्या मिला?

कुछ भी नहीं मिला नानी! लोग कहते हैं, इतनी बड़ी लड़की होकर भीख माँगती है! जा, नौकरी कर ले।

वृद्धा ने आँखें बंद करते हुए कहा—हाँ बेटी, तू नौकरी कर ले। मैं भी जाती हूँ, मेरी नौकरी पूरी हो गई।

कहाँ नानी?

यहाँ की नौकरी से मन भर गया। वहाँ की नौकरी करने जाती हूँ।

रधिया की समझ में कुछ नहीं आया।

उसने कई बार पूछा—कहाँ नानी? किंतु उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

प्रतीक्षा

१

वह एक स्वप्न था। नदी की निर्जनता थी। संध्या मुसकिया रही थी। उसकी गोद में बैठा हुआ मदन स्वप्नों पर सोने की कूची फेर रहा था। इतना ही उसका आकर्षक परिचय था। वह वहाँ बैठकर कुछ पंक्तियाँ लिखता और पास ही के एक लता-भवन में, संसार की दृष्टि से छिपकर, अस्फुट शब्दों में उन्हें गाया करता था।

इसी गाने पर सुंदरी एक दिन मुसकिराकर चली गई थी। उसकी आँखों में गर्व था और चाल में मादकता।

मदन ने सुंदरी के इस भाव को देखा, सराहा भी; किंतु समझ नहीं सका। उसकी कल्पना का संसार नए रूप से नींव रखने लगा। परंतु लालसाओं पर उसका अधिकार नहीं था। वह दरिद्र था और सुंदरी राजकन्या।

एक दिन सुन पड़ा, मदन को राज्य की सीमा के बाहर निकल जाने की आज्ञा हुई है। अपराध का पता नहीं चला।

२

राजकुमारी को मदन का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। मदन चला गया। प्रेमोन्माद और वेदना बढ़ने लगी। कविता की गति बदलने लगी। भावों का उत्तरोत्तर विकास होने लगा। घायल हृदय के उच्छ्वास और भी गर्म हो चले।

सरिता-तट पर निर्जन वन के हृदय से जब प्रति-ध्वनि उठती, तो उसकी सुरीली तान उसे स्मृति के गोद में बिठा देती थी। उस समय वह अपने को भूल जाता था। यही उसका सुख था।

दिन आते और चले जाते। हृदय में एक विचार-धारा आती और बह जाती थी, और संसार के तट को एक जोर का धक्का लगाकर संसार की नश्वरता की कुछ मिट्टी बहा देती थी।

अब उसके बाल सफेद होने लगे। शरीर शिथिल हो चला।

३

राजकुमारी तारा का जीवन शांतिनगर के राजा के प्रेम-सुख में बीतता रहा।

दो युग बीत गए।

अब राजकुमारी एक वह रंगस्थली है, जिसके यौवन का नाटक समाप्तप्राय और एक विगत गौरव की छाया-स्मृति है। और, मदन अब संसार की वह संपत्ति है, जो नित्य नवीन रहती है—वह कवि है, जो विश्व के हृदय में सदा ही सजीव और सचेष्ट है।

अब उसे और कोई आशा नहीं थी। केवल जन्मभूमि की स्मृति से उसका आकर्षण कभी-कभी असह्य हो उठता था। वह चाहता था, उस प्राप्ति के हृदय पर अपनी पूर्णता को खाली करे, कुछ शांति पावे।

शांति-नगर के राजा का निमंत्रण आया।

कवि उस नगर में गया। चारों ओर हर्षोत्साह का सागर उमड़ रहा था। तारा तक कवि की प्रशंसा पहुँच चुकी थी।

कवि ने इतने दिन संसार के रहस्यों के ही गीत गाए थे। छिपी सौंदर्य-श्री की तलाश थी।

उसकी आँखों में तेज था। उसका व्यक्तित्व अजेय था। अतीत की व्याकुलता और निराशा की चिरशून्यता झलक रही थी।

उस दिन महाराज की ओर से सभा हुई। मंच पर कितनी ही आँखों ने उसे देखा। बार-बार अतृप्ति की उत्सुकता में भर-भरकर कितने ही अपरिचित हृदय उसके परिचय से प्रसन्न थे। उसकी वाणी सभा में विजयी हुई। लोगों ने कहा—यह देवता है।

४

कवि एक दिन राजा के बाग में झील के किनारे टहल रहा था। पार की घनी हरियाली जैसे चुपचाप उससे कुछ कहना चाहती हो, यह समझकर उसके निराश प्राणों में सजीवता आ जाती। वह गाता, झील की लहरें उस पर ताल दे-देकर उसका समर्थन करतीं; वह सुनता, समग्र वायु-मंडल में उसके गीत गूँजते रहते।

उसकी आँखें पीछे फिरीं। उसने देखा, राजमहल में एक स्त्री अपने बच्चों को खेला रही है। देखा, उसके यौवन की समाधि पर लावण्य आज भी उसका सहचर है। बार-बार देखा। स्मृति ने उससे कहा—हाँ, यह वही राजकुमारी तारा है।

वह बड़े स्नेह से बच्चों को खेला रही थी। उनकी हँसी के साथ वह भी हँस पड़ती थी। कवि ने देखा, अब अधरों पर उषा की लाली नहीं है; वहाँ है अँधेरी संध्या के प्रकाश की



स्मृति ने उससे कहा—"हाँ, यह वही राजकुमारी तारा है।"

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

धुँधली रेखा! उसने मन-ही-मन कहा—"हाय, मैं इसके अरुण यौवन के गीत न गा सका!"

५

एक दिन तारा के हृदय में भी कवि के दर्शन की श्रद्धा उत्पन्न हुई। बच्चों के साथ वह कवि की कुटी पर पहुँची। देखते ही कवि उसे पूर्व-परिचित-सा जान पड़ा। उसने आँखें नीची कर लीं। कवि को प्रणाम किया।

तारा ने पूछा—"आपका जन्मस्थान?"

"प्रेमनगर!"

"प्रेमनगर?" तारा सोचने लगी।

कवि के मस्तक पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। वह थोड़ी देर के लिये चुप हो गया।

तारा स्मृति-सागर में डूब गई। उसके हृदय पर धीरे-धीरे पूर्व-काल की घटनाओं की छाया पड़ने लगी। उसने मन-ही-मन कहा—"यह मदन तो नहीं है?"

सारा वायु-मंडल घहरा उठा—"यह मदन तो नहीं है?"

कवि की दृष्टि में तारा का प्रेम अब कपोलों पर सूखे आँसू की तरह दिखलाई देता था।।

तारा ने धीमे स्वर में कहा—"उस समय मैं आपको नहीं

पहचान सकी थी। आपके गीतों का मूल्य नहीं समझ सकी थी। क्या अब आप नहीं गाते ?"

"अब सरिता की धारा में वेग नहीं है।"

कवि ने एक बार आकाश की ओर देखा—"धुंधली संध्या थी।"

विलंब

१

"क्या तुम मुझे सचमुच चाहती हो ?"

उत्तर मिला—"किन शब्दों में कहूँ।"

"नहीं, तुम मुझे नहीं चाहतीं।"

"यह आपने कैसे कहा ? नित्य आप ही का चिंतन करती हूँ, बार-बार आप ही का प्रेम-गीत गाती हूँ। रात्रि में सोते समय आप ही का स्वप्न देखती हूँ, हृदय से लगाने के लिये दोनो हाथों को फैलाती हूँ; किंतु आप चले जाते हैं। जब प्रातःकाल उठती हूँ, स्वप्नों के चित्र आँखों में तरने लगते हैं। सोचती हूँ, आप क्यों चले जाते हैं ?"

उत्तर मिला—"अच्छा, तुम जिस दिन मुझे पूर्ण रूप से चाहोगी, जिस क्षण हृदय से याद करोगी, मुझे तत्काल अपने समीप पाओगी।"

कहकर वह चले गए।

उसने साँस खींचकर कहा—"आह, वह चले गए। उन्हें जी-भर हाथों से भेंट न सकी, और वह एकाएक चले गए।"

२

दिन-पर-दिन बीतने लगे।

महीने-पर-महीने आने लगे।

वर्ष के बाद वर्ष समाप्त हो गए।

बादलों के पंखों पर उड़कर बरसात आई और चली गई। उद्यानों में फूलों के अधरों को चूमकर वसंत चला गया। शिशिर भी अपनी शीतलता छिड़ककर चली गई।

सभी ऋतुएँ आईं और चली गईं। पर वह जिसे चाहती थी, वह नहीं आया।

एक दिन एकांत में उसने अपने हृदय को छेड़कर उससे पूछा—"उन्होंने कहा था, तुम मुझे जिस क्षण हृदय से याद करोगी, तत्काल अपने समीप पा जाओगी!"—क्या तुमने

सचमुच कभी स्मरण नहीं किया ? या यह भी उनकी एक दिल्लगी थी, बहला देने का ढंग था ?

हृदय ने धीमी साँस से कहा—"धैर्य धरो।"

"इतने पर भी ?"

"हाँ।"

लोभी हृदय की आशा पर, साहस पर उसे आश्चर्य हुआ।

आकिंचन

१

"मा, भूख लगी है"—बालक ने कातर वाणी में कहा।

माता निरीह दृष्टि से बालक की तरफ़ देखती हुई बोली—"बेटा, कुछ देर ठहरो। देखो, बाबा आज क्या लाते हैं?"

बालक मचल-मचलकर रोने लगा।

माता ने उसे फ़ुसलाते हुए उँगली के इशारे से कहा—"वह देखो, बाबा आ रहे हैं।"

थोड़ी देर बाद एक चर्मावशिष्ट कंकाल ने घर में प्रवेश किया। उसकी धँसी हुई आँखों से निराशा बरस रही थी। वह बच्चे को गोद में लेकर चुपचाप बैठ गया।

स्त्री ने धीमे स्वर में कहा—"कहिए, आज क्या प्रबंध हुआ ?" उसने कुछ जवाब नहीं दिया। एक 'आह' खींचकर वह आकाश की ओर देखने लगा। उस समय अँधेरा हो चला था। नीले आकाश की गोद में कई तारे हँस रहे थे।

उसने मन-ही-मन कहा—हे भगवन्, यह जीवन-नौका किस प्रकार पार लगेगी ?

स्त्री ने विकल होकर कहा—"आज घर में बच्चे के लिये भी कुछ नहीं है !"

पुरुष की आँखें उमड़ आईं। उसने रुद्ध कंठ से कहा—"अह, कहीं से एक पैसा ऋण भी नहीं मिला।"

उसी समय बालक ने उसकी ठुड्डी हिलाते हुए कहा—"बाबा, आज खाने को क्या लाए ?"

इस बार वह अपने को रोक नहीं सका। आँखों की उमड़ी हुई नदियाँ बड़े वेग से बह चलीं। स्त्री पुरुष की ओर देखकर अधीर हो गई। उसकी आशा का बाँध टूट गया। उसने सिसकते हुए कहा—"संसार क्या दुखियों के लिये नहीं है !"

बड़ी देर तक दोनो अपने उजड़े हुए हृदय को थामकर चुप-चाप बैठे रहे। दानवी चिन्ता उनके साथ भीषण परिहास कर रही थी।

स्त्री ने बालक की ओर बड़े स्नेह से देखा—वह गोद में सो

गया था। उसके सुकुमार कपोलों पर आँसू की लकीरें खिंची हुई थीं।

२

देखते-देखते उस छोटी-सी कुटिया में सुनहली किरणों ने प्रवेश किया। भूमि पर स्त्री, पुरुष और बालक सोए हुए थे। सहसा स्त्री की निद्रा टूटी। उसके मुख पर किरणें चमक रही थीं। उसने आप-ही-आप कहा—"किरणों की तपन जलाकर मुझे राख क्यों नहीं कर देती?"

उसी समय बालक की भी आँखें खुलीं। वह उठकर बैठ गया।

"बाबा, उठो। बली देल हुई"—बालक ने कहा।

पुरुष ने भी आँखें खोल दीं। वह उठकर बैठना चाहता था, पर कमजोरी के कारण गिर पड़ा। उसकी आँखों के सामने अँधकार छा गया।

स्त्री ने कातर होकर कहा—"कई दिन उपवास करते बीत चुके, पेट में ज्वालामुखी धधक रही है; हे प्रभु! अब भी कुछ शांति दो।"

पुरुष सँभलकर फिर उठा। उसने करुण कंठ से स्त्री को सांत्वना देते हुए कहा—"आज मैं अंतिम बार अपने भाग्य

को अजमाऊँगा।"—यह कहते हुए वह कुटिया के बाहर धीरे-धीरे चला गया।

स्त्री बालक को छाती से चिपटाकर भूमि पर लेट गई। अबोध बालक उसके सूखे स्तनों को मुँह में लगाए हुए दूध के लिये बिलखने लगा।

❀ ❀ ❀

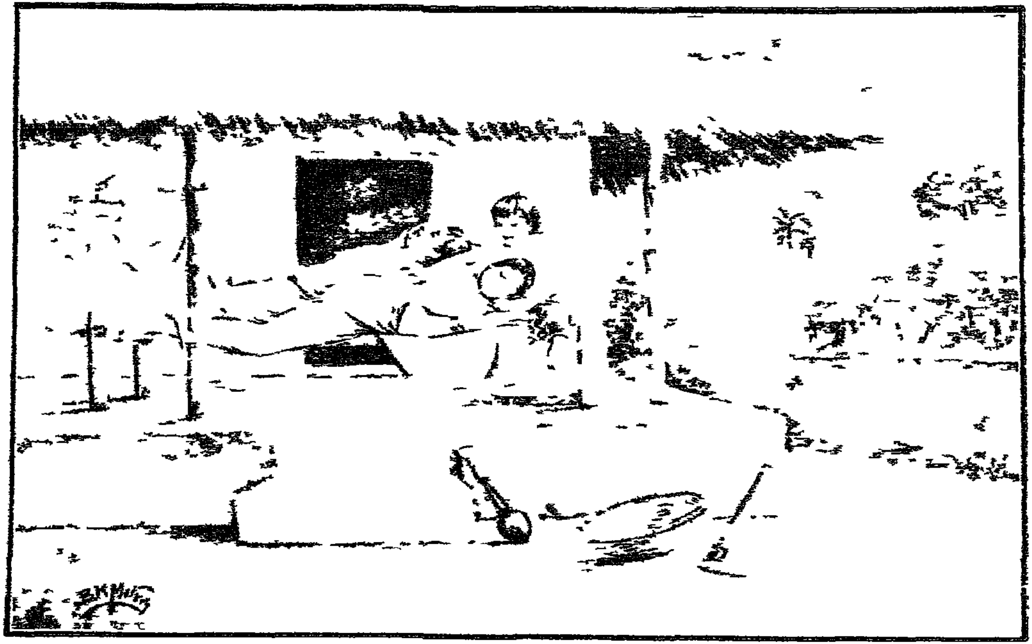
संध्या हो चली थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कुछ किरणें अब भी बिखरी हुई थीं।

सहसा पुरुष ने लड़खड़ाते हुए कुटी में प्रवेश किया। सामने आकर वह गिर पड़ा। स्त्री ने देखा—पति को मूर्च्छा आ गई है। उसने शीतल जल से मस्तक को तर किया। पुरुष होश में आ गया। उसने कहा—"आज मार्ग में इसी तरह तीन बार मूर्च्छा आ गई थी। एक-एक पग मुश्किल से चलकर यहाँ तक पहुँचा हूँ। हा! आज भी कुछ नहीं मिला। मार्ग में एक आम के वृक्ष के नीचे दो आम पड़े थे, उन्हें बालक के लिये उठा लाया हूँ।"—कहकर उसने दो आम सामने रख दिए।

स्त्री ने एक लंबी आह खींचकर सिर नीचा कर लिया।

❀ ❀ ❀

धीरे-धीरे रजनी ने संसार को अंधकार के अंचल में छिपा



"आह, कोई नहीं उठना !"—कहते-कहते उसकी आँखें छलछला पड़ीं ।"

लिया। नन्ही कुटी में भगवती निद्रा की गोद से एक पुरुष, एक स्त्री और एक बालक की आँखों को चूमने लगी।

३

सदा की भाँति प्रभात की सुनहली किरणों ने फिर उस कुटी में प्रवेश किया। वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए विहग अपने मृदु कलरव से प्रभात का जीवन-संगीत गा रहे थे। सन-सन-सन करते हुए पवन जागरण का संदेश दे रहा था।

बालक जागकर उठ बैठा। उसने बड़े आश्चर्य से देखा—भोर हो गया है, पर अभी तक माता और बाबा की नींद नहीं खुली।

उसने कहा—"मा, उठो! सबेला हो गया।"

किंतु मा न उठी।

उसने अपने नन्हे-नन्हे हाथों से बाबा को उठाते हुए कहा—"बाबा, उठो।" किंतु कोई उत्तर नहीं मिला।

"आह, कोई नहीं उठता!"—कहते-कहते उसकी आँखें छलछला पड़ीं। वह उन्हें बार-बार जगाने की चेष्टा करते हुए उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगा!

किंतु उस अबोध बेचारे की प्रतीक्षा कभी सफल होगी?

चित्रकार

चित्रकार बैठा था। कोई काम उसके हाथ में न था। वह दानों के लिये तरसने की तैयारी कर रहा था; परंतु कलावंत था, उसे जैसे परवा न थी।

उसकी चटाई पर चित्र-लेखन की सामग्री बिखरी थी। वह सोचता था—कोई तो आवेगा ही। हुआ भी ऐसा ही। एक सुंदरी स्त्री आई। उसने पूछा—"घनश्याम चित्रकार तुम्हारा ही नाम है ?"

"हाँ"—कहकर चित्रकार उस रसभरी मेघमाला को देखने लगा।

"क्या मेरा एक चित्र बना दोगे ?"

"बन सकेगा ? – मुझे तो आशा नहीं।"

"चेष्टा कर देखो। परंतु मैं बैठकर शबीह न लगवाऊँगी।"

"नहीं, उसकी तो कोई आवश्यकता नहीं। परंतु मैं ऐसा सुंदर चित्र बना सकूँगा या नहीं, मुझे तो संदेह है।"

"तुम बना सकोगे" - कहकर सुंदरी ने मुसकिरा दिया। एक पत्र दिया, कहा—"बनाकर इसी पते से ले आना।"

वह चली गई।

दरिद्र चित्रकार ने, जिसके पास खाने को भी नहीं था, कुछ खर्चे के लिये नहीं माँगा। वह चुपचाप कल्पना से क्षितिज पर सुंदरी का चित्र बनाने लगा।

* * *

स्वर्णमयी उषा के आगमन के साथ ही चित्रकार अपनी शय्या छोड़ देता। वह एकांत स्थान में बैठकर प्रकृति के सौंदर्य को देखता। सूर्य का उदय, पूर्व दिशा की लालिमा, हरे-हरे वृक्ष और पर्वतों की श्रेणियों को देखता और पक्षियों का गान सुनता था।

वह ध्यान में लीन रहता। सूर्य आकाश में ऊपर चढ़ आता, सूर्य का प्रकाश उसके ऊपर पड़ता, वह सहन न कर सकता, उसका ध्यान टूट जाता। वह अपनी कुटिया में आकर



"वह चुपचाप कल्पना से क्षितिज पर सुंदरी का चित्र बनाने लगा।"

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

कुछ बनाने लगता। कभी-कभी वसंत का पवन उसकी कुटिया में सूखी पत्तियाँ लाकर फेंक जाता। वह उन्हें उठाकर देखने लगता, फिर चित्र बनाने लगता। कभी-कभी वह गुनगुनाने लगता। विकल होकर कभी कुटिया के बाहर आकर आकाश की तरफ़ देखता, और कुछ सोचने लगता। अपने विचार से जब उसका ध्यान हटता, तब वह देखता, भगवान् भास्कर आकाश से विदा हो रहे हैं। उनकी अंतिम किरणों की आभा आकाश में सफ़ेद-सफ़ेद बादलों के पंखों पर सुनहली चित्रकारी कर रही है। आकाश का रंग कभी नीला हो जाता, कभी लाल, और कभी सब रंग एक ही रूप में दिखलाई देते।

वह बैठ जाता। चुपचाप प्रकृति की लीला देखता जाता। गोधूलि का पहला तारा उसे दिखलाई देता। वह कहता—"यह भी अपूर्व लीला है—सब तारे एक साथ क्यों नहीं निकलते?" वह बड़े ध्यान से ऊपर देखता—मानो तारा कह रहा हो—मेरा भी चित्र बना सकोगे?

जो कुछ वह देखता, मानो सब कहते—"हमारा भी चित्र बना लो!" किंतु चित्रकार कहता—"नहीं, तुम्हें देखने से मेरे हृदय में कुछ शांति अवश्य मिलती है; किंतु तुम्हारा चित्र बनाकर मैं अपने हृदय में शांति का राज्य स्थापित नहीं कर सकूँगा। मेरे अंतःपटल पर मेरे अतीत का जो दृश्य अंकित

है—जिसके लिये मैं रुदन करता हूँ, विलाप करता हूँ—उसी का चित्र बनाऊँगा। तुम्हें तो सभी प्रत्यक्ष देखते हैं; पर मेरे अतीत को कौन देख रहा है। मैं चित्रों द्वारा उसे दिखाऊँगा।"

※ ※ ※

दिन-पर-दिन बीतने लगे। चित्रकार केवल चित्रकार ही न था, वह कुशल कवि भी था। कभी कभी वायु के साथ वह गान भी करता।

चित्रकार का न कोई मित्र था, न साथी। उस निर्जन स्थान में वह एकांत-वास करता था। संसार के मायाजाल से वह अलग था। वह पुस्तकें पढ़ता, चित्र बनाता और विचार करता। इतने ही में उसका सारा समय बीत जाता। इसी में उसे शांति मिलती।

उसके पास एक अमूल्य वस्तु थी, वही उसकी सर्वस्व थी। उसे वह बड़ी सावधानी से रखता था। वह था—उसका प्रेम-पत्र! कभी-कभी रजनी में वह दीपक के प्रकाश में उसे पढ़ता था। पढ़कर रोता, फिर हृदय से लगा लेता।

※ ※ ※

बहुत दिनों के बाद—

चित्रकार का चित्र बन चुका था। शीतल मलय पवन

के एक झोंके ने कुटिया का द्वार खोल दिया। उसकी दृष्टि चारों तरफ़ दौड़ने लगी। उसने देखा, आकाश के मध्य में सूर्यदेव आ गए हैं। अब चित्रकार के मुख पर शांति और संतोष था। वह विकलता नहीं थी। करुणा ने अब ज्ञान का रूप धारण कर लिया था। वह चुपचाप बैठा था। चित्र तैयार था।

द्वार पर कुछ शब्द हुआ। चित्रकार आश्चर्य से उस तरफ़ देखने लगा। किसी ने पूछा—"मुझे पहचानते हो?"

चित्रकार ने कहा—"न......हाँ...।"

"क्या वे दिन भूल गए?"

"कुछ-कुछ।"

"क्या रोने के दिन बीत गए?"

"हाँ।"

"अब देखने से मालूम पड़ता है, तुम एकदम बदल गए!"

चित्रकार ने बड़े मधुर शब्दों में कहा—"जो पहले ग्लानि और चिंता थी, वही अब शांति के रूप में हृदय में वास करती है। जो प्रेम था, वह ज्ञान के रूप में परिणत हो गया है।"

दोनों एक दूसरे को देख रहे थे।

चित्रकार ने फिर कहा—"एक बोझ अभी तक हृदय पर है, आज वह भी दूर हो जायगा।"

इतना कहते हुए उसने वह चित्र और पत्र निकाला। वह एक बार चित्र की तरफ़ देखता, और एक बार उसकी तरफ़। दोनों चुपचाप खड़े थे। चित्रकार ने पहले उसे पत्र दिया। उसने उसे देखकर कहा—"यह तो मेरा ही लिखा हुआ है।"

चित्रकार ने "हाँ" कहते हुए उसके हाथ में चित्र दे दिया। तब उसने कहा—"यह तो मेरी ही सूरत का चित्र मालूम पड़ता है।"

चित्रकार बड़े ध्यान से उसकी तरफ़ देखने लगा। उसने कहा—"हाँ। इसे बनाकर ही मुझे शांति मिली है। और अब अंतिम मिलन है। मैं जाता हूँ।"

इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चित्रकार देखते-ही-देखते न-जाने कहाँ चला गया!



तब उसने कहा—यह तो मेरी ही सूरत का चित्र मालूम पड़ता है।

गायक

संगीतज्ञों की सभा थी। बड़े-बड़े संगीत-कला के गुणी लोग एकत्र हुए थे। फूलों की माला, तोरन और वंदनवार से सभा का मंडप सुशोभित हो रहा था। उस दिन सबमें उत्साह था। सबने बड़ी निपुणता से अपना-अपना कौशल दिखलाया। गुणियों की प्रतिद्वंद्विता चल रही थी।

आचार्य अपनी वीणा बजाने लगे। सब मंत्रमुग्ध हो गए। प्रकृति शांत हो गई। पत्तों की खड़खड़ाहट बंद हो गई थी। वायु की गति शिथिल हो रही थी। सबने प्रशंसा की। वाह-

वाह् की ध्वनि से सभा गूँज उठी। आचार्य हँस पड़े, विजय की प्रसन्नता थी।

* * *

सबके बाद वह उठा। वह गायक था। वाद्ययंत्रों की स्वर-लहरियों ने उसे उत्तेजित कर दिया। वह सँभल न सका। कुछ गुनगुनाने लगा। कुछ देर बाद उसने करुण-कोमल स्वर से एक तान ली। उसकी तान में दर्द था।

आचार्य ध्यान से देखने लगे। वीणा बजाना बंद कर दिया। आगंतुक ने बिना आज्ञा के यह धृष्टता की थी। आचार्य ने द्वारपाल की ओर उसके शासन के लिये संकेत किया। किंतु गायक की तान ने सबको चकित कर दिया। सब बेसुध हो गए। आचार्य ने वीणा फेंकते हुए कहा—"यह क्या ?"

ऊँचे मंच पर राजा के पास ही राजकुमारी बैठी थी। अपनी मुक्तावली गायक की ओर फेंकते हुए उसने कहा—"बहुत सुंदर गाया।"

अब तो आचार्य प्रकृतिस्थ हो गए। उनके मुँह से निकल पड़ा—"तुम श्रेष्ठ कवि हो, तुम सच्चे गायक हो, और तुम्हीं संगीत के आचार्य हो।"

मोह

१

रम्मू तीन वर्ष का हो चुका था। अब वह अपनी तोतली भाषा में कुछ बोल भी सकता था। बूढ़े बिहारीलाल को उससे बड़ा स्नेह था। रम्मू भी उन्हें अपना खिलौना समझता था। प्रातःकाल उठते ही रम्मू बिहारी के कमरे का द्वार खटखटाकर कहता—बाबा, ऊथो!

रम्मू की पुकार से बिहारीलाल को उठना ही पड़ता था।

२

बिहारीलाल ने सरकारी नौकरी में ही अपने सिर के बाल पका दिए थे। इस समय उनकी अवस्था ६० वर्ष की थी। नौकरी से पेंशन लेकर वह अपने जीवन का शेष समय रम्मू के पिता के मकान में किराए पर एक कमरा लेकर व्यतीत कर रहे थे। रम्मू का उनका दिन-रात का साथ था।

रम्मू अक्सर बिहारीलाल की पीठ पर सवार होकर बाजार घूमने जाता। बूढ़े के बिना न रम्मू को चैन थी और न रम्मू के बिना बूढ़े को।

रम्मू बिहारीलाल की बहुत-सी चीजें नष्ट कर देता। उसने उनकी बहुत-सी पुस्तकों पर पेंसिल से चिह्न बना-बनाकर रँग डाला था, उनके कमरे की दीवारों पर सैकड़ों रंगीन लकीरों से चित्रकारी कर दी थी, किंतु बिहारीलाल कभी कुछ न कहते थे। रम्मू की इन क्रियाओं में बाल्य-कला-कुशलता देखकर वह मन-ही-मन मुस्किराते थे।

जब कभी रम्मू की मा उसे मारती, तो वह रोता हुआ बिहारीलाल के पास जा पहुँचता। वह उन्हें ही अपने दुख-सुख का साथी समझता था।

बिहारीलाल के कोई संतान न थी—पर रम्मू के क्रीड़ा-

कौतुक में तन-मन भूल जाने से उन्हें यह अभाव कभी खला नहीं। रम्मू को देखते ही वह कभी-कभी कह बैठते—"देखो, वह स्वर्ग का हँसता हुआ खिलौना मेरे पास आ रहा है।"

३

रम्मू अब पाँच वर्ष का हो गया था।

एक दिन रम्मू की मा और बिहारीलाल की स्त्री में खटपट हो गई। बात यहाँ तक बढ़ गई कि रम्मू के पिता ने बिहारीलाल को मकान छोड़ देने के लिये कह दिया।

बिहारीलाल बड़े संकट में पड़े। वह सोचते—हाय, मेरा कलरवमय, सुखमय बसेरा अब किस पाप से छूट रहा है भगवन्!

पर उनकी स्त्री मकान छोड़ देने की शपथ खा चुकी थी। संध्या का समय था। बिहारीलाल अपने कमरे में उदास बैठे थे। रम्मू ने कहा— "बाबा, क्या करते हो?"

"कुछ नहीं रम्मू, अब तो तुम्हारा साथ छूट जायगा?"

"क्यों?"

"तुम्हारे पिता की आज्ञा है कि मकान छोड़ दो।"

"तो अब कहाँ जाओगे बाबा?"

"जहाँ ईश्वर ले जायगा बच्चा!"

४

ठीक उसी समय रम्मू की मा ने पुकारा—"रम्मू, यहाँ तो आ।" अपनी मा की तीव्र ध्वनि से रम्मू समझ गया कि मुझसे कोई ऐसा अपराध हो गया है, जिसके दंड के लिये अम्मा बुला रही हैं।

डरते-डरते वह मा के पास पहुँचा। पीठ पर एक धमाका लगाते हुए मा ने कहा—"उस बुड्ढे के यहाँ मत जाया कर।" बालक ने सिसकते हुए पूछा—"क्यों अम्मा ?"

"मैं कहती हूँ।"

"बाबा बड़े अच्छे हैं, बाबूजी उनको क्यों निकाल रहे हैं ?"

"एक बार कह दिया—अब बाबा के यहाँ जाओगे, तो मार खाओगे।"

रम्मू की समझ में कुछ नहीं आया। मार खाने के भय से वह आगे कुछ न पूछ सका।

बिहारीलाल के कानों में ये बातें पड़ गईं। उनके नयनों की निर्झरिणी बह चली।

उनकी स्त्री ने कहा—"देखा, बच्चे का क्या दोष था, जो उसे मारा। हम लोगों के कारण ही तो उसे मार खानी पड़ी। अब कल ही मकान छोड़ दो।"

बिहारीलाल मन-ही-मन सोचने लगे—यदि आज ईश्वर ने मुझे भी एक प्यारा बच्चा दिया होता, तो उस पर मेरा पूर्ण अधिकार होता। रम्मू दूसरे का बालक है, उस पर मेरा क्या चारा? हाय, रम्मू का साथ तो छूट जायगा, अब बाबा कह-कर मुझे कौन पुकारेगा? अब मेरी आँखों की ज्योति किसे देखकर दुगुनी होगी, मेरे तन-मन किसे देखकर खिलेंगे!

* * *

बिहारीलाल ने वह मकान छोड़ दिया।

कई दिन तक दूसरे मकान में रहे, किंतु उस मकान की दीवारों पर न तो रम्मू के हाथ की रंगीन लकीरें थीं और न कोई स्वर्गीय कलरव। हाँ, कमरे की नीरस निस्तब्धता में कभी-कभी उनके आँसुओं का उज्ज्वल कंपन मोतियों की तरह चमकता हुआ दिखलाई पड़ता था।

अंत में वह शहर छोड़कर चले गए। उन्होंने कहा—"यहाँ रहूँगा, तो रम्मू के देखने की इच्छा को न रोक सकूँगा। यहाँ न रहूँगा, तो फिर क्या? कुछ शांति अवश्य मिलेगी।"

५

बहुत समय बीत गया। अब बिहारीलाल का समय ईश्वर की आराधना में ही लगता था।

* * *

मोह

हरिहरक्षेत्र का मेला था। बिहारीलाल स्नान करके हरिहर-नाथ महादेव के दर्शन करने जा रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक तरफ़ को चली गई। उन्होंने देखा—यह क्या! रम्मू की तरह एक बालक कुछ दूर पर खड़ा दिखाई पड़ा!! उनकी आँखों की तृष्णा बढ़ गई। वह खड़े-खड़े कुछ सोचने लगे। क्षण-भर बाद उन्होंने वहीं से कुछ सुंदर खिलौने खरीदे।

रम्मू का किशोर स्वरूप उन्हें और भी आकर्षक हुआ। बड़े साहस से वह उसके सामने आकर खड़े हो गए, और खिलौने देते हुए कहा—"बच्चा, अच्छे हो?"

वह विस्मित नयनों से उनकी ओर देखने लगा। उसकी आँखों में जिज्ञासा मँडराने लगी।

"मैंने आपको नहीं पहचाना, आप कौन हैं?" कहते हुए वह आगे बढ़ा।

बिहारीलाल कुछ उत्तर न दे सके, उनके हाथों से खिलौने छूटकर गिर पड़े।

पगली

१

"पगली, ओ पगली !—पगली रे ! हः-हः-हः हः, पगली रे ! पगली ।"—कहते हुए बालकों का झुंड पगली के पीछे दौड़ रहा था ।

चलते चलते पगली एक जगह खड़ी हो गई । एक लड़के ने दूर ही से पगली की ओर एक पत्थर फेंककर कहा—"पगली रे ! ओ पगली !!"

पगली चोट खाकर उछल गई । उसने भयंकर रूप बनाकर कर्कश स्वर में कहा—"दूर—दूर—ह—ट"—कहते हुए वह लड़कों के पीछे दौड़ी । लड़के भाग चले ।

लड़कों से पीछा छुड़ाने के लिये पगली एक घर में घुस गई। भीतर से किसी ने कहा—"मारो - मारो पगली आई पगली।" एक आदमी ने पगली को मारते हुए घर से बाहर निकाल दिया।

चोट के कारण पगली के शरीर में कई जगह घाव लग गए थे। उसने आकाश की ओर देखते हुए कहा—"ओ—ओ! देखो, देखो, आकाश फट पड़ा है, पृथ्वी जल रही है—चारों तरफ आग लगी हुई है। देखो—देखो, आग—आग।

चलते-चलते पगली एक विशाल भवन के सामने जाकर खड़ी हो गई। मकान की ओर देखकर उसने कहा—"यह ऊँचा मकान भी एक दिन गिर जायगा।" कहकर वह नाचने लगी। कभी उँगलियाँ चमकाकर कहती—"एक दिन मैं ही सारी दुनिया की रानी बनूँगी, ऐसे-ऐसे सैकड़ों मकान बनवाऊँगी, उनमें झूला डालकर झूलूँगी—हः-हः हः-हः, झूलूँगी—खूब झूलूँगी।" कभी मुँह बनाकर कहती—"न झूलूँगी, उहुँः! न झूलूँगी। एक दिन मेरा मकान भी गिर जायगा, सच?"

२

पगली की अवस्था ४० वर्ष से कम न थी। उसके शरीर



"दूर हो यहाँ से !" यह कहते हुए बालक को उसने उठा लिया ।

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

का सारा मांस सूख गया था, हड्डियों की ठठरी रह गई थी; फिरभी उसके मुख पर बड़ा तेज था। अरुण आभा से उसका मुख-मंडल प्रदीप्त हो रहा था।

* * *

पगली कहीं चली जा रही थी। एक मनुष्य ने निर्भीकता से उसका हाथ पकड़कर कहा—"आज भटकते भटकते इधर कहाँ चली आई हो ?"

उसने हाथ खींचकर कहा—"छोड़ो, छोड़ो, मुझे बहुत दूर जाना है। छोड़ो, छोड़ते क्यों नहीं ? हटो, मेरी राह छोड़ो .....।"

उसने पगली का हाथ छोड़ते हुए कहा—"आज कुछ खाया है या नहीं ?"

पगली ने उसकी तरफ देखते हुए कहा—"भूख-भूख भूख !"

उसने एक दूकान से कुछ खरीदकर पगली को खाने को दिया।

पगली एक जगह बैठकर खाने लगी।

एक राह-चलते ने पूछा—"भाई, यह पागल कैसे हो गई ? देखने से अच्छे घर की मालूम पड़ती है।"

उसने कहा—"इसका मकान हमारे पड़ोस में था। बड़े धनी घर की थी, बाल-बच्चों से घर भरा-पुरा था। दैव की माया !

कराल काल ने अपनी कुटिल चाल से इसका सब कुछ नष्ट कर दिया। अब न तो कोई इसके आगे है और न पीछे। ग्लानि और चिंता से यह पागल हो गई है। भीख माँगकर अपना दिन काटती है। मुझको पहले यह बड़ा मानती थी, अब पहचानती तक नहीं।" -बात कहते-कहते वह चला गया।

पगली राह में सो गई थी। एक राह-चलते ने उसे ठोकर मारते हुए कहा—"हट—हट—यहाँ से भाग जा।" पगली उठी और आगे बढ़ी।

३

दिन-पर-दिन बीतने लगे। अब पगली को देखकर लोग डर जाते थे।

एक दिन पगली कहीं से आ रही थी—सामने हलवाई की एक दूकान दिखाई पड़ी। वह दूकान पर चढ़ गई। दोनों हाथों में मिठाइयाँ लेकर चली। चलते समय दूकानदार ने पगली के एक हाथ कसकर मारा। बेचारी फिर पड़ी। कुछ देर के बाद वह उठी। खाते हुए चली गई।

कुछ लोगों ने कहा—"पगली को पागलखाने में भेज दिया जाय।"

❋ ❋ ❋

एक मास हो गया।

अब पगली चल नहीं सकती थी। मार पड़ते-पड़ते उसकी देह बहुत कमज़ोर पड़ गई थी। वह ज्वर के प्रकोप से सड़क की एक पटरी पर पड़ी हुई थी। रह-रहकर कराह रही थी। उसके चारो तरफ़ भीड़-सी लग गई थी।

उसी भीड़ में से एक ने कहा—"राम का नाम ले पगली! पगली ने तीव्र ध्वनि में कहा—"राम! राम! राम! राम! वह देखो, राम आए और चले गए। पकड़ो—पकड़ो! देखो, वह जा रहे हैं।" कहते-कहते पगली ने आँखें बंद कर लीं।

ठीक उसी समय पुलिस के दारोग़ा सिपाहियों को लेकर पगली को पागलख़ाने भेजने के लिये आए। किंतु उनके आने से पहले ही पगली की आत्मा पागल संसार को छोड़कर सदा के लिये कहीं चली गई थी।

उत्कंठा

१

जाह्नवी के उस पार एक मनोहर उपवन था। गंगा का पिता उसमें माली था।

गंगा नित्य उपवन के फूलों को चुन-चुनकर माला गूँथती और उसे अपने ही गले में डालकर आनंद-मग्न हो जाती थी। वह प्रायः उपवन की क्यारियों को अपने कोमल हाथों से साफ करती और उसका पिता उनमें पानी बहाकर उपवन को सींचा करता था।

२

गंगा का जीवन यौवन की लहरों में बह रहा था।

वह नित्य प्रभात में फूलों के अधरों पर बैठे हुए मधुप का 'गुन-गुन-गुन' प्रेम-संगीत सुनती, फूलों को झूमते हुए देखती, तब उसका भी हृदय आप-ही-आप किसी को खोजने लगता। वह गद्‌गद हो जाती।

उसके पास हृदय था, किंतु रूप नहीं।

ईश्वर ने उसका एक अंग भी सुंदर नहीं बनाया था।

वह जिस समय फूलों को चुनती, उस समय यदि कोई उड़ता हुआ भ्रमर उसके सम्मुख आ जाता, तो वह कहती—"दूर हो निष्ठुर! तू चार दिनों के लिये खिले हुए फूलों की सुंदरता पर रीझकर उनका मधु पान कर उन्हें बड़ी निर्दयता से छोड़ देता है; स्वार्थी! दूर हो दूर।

वह नित्य अपनी आँखें उपवन की राह में बिछा देती। उस राह से कितने ही पथिक आते-जाते, उसका हृदय उछल पड़ता, किंतु वह उनकी आँखों में रुखाई देखकर निराश हो जाती। एक लंबी साँस खींचकर फूलों की ओर देखने लगती।

३

निशा सुंदरी फूलों के अधरों पर अपने चुंबन के सैकड़ों

चिह्न छोड़कर विदा हो चुकी थी। सूर्य की सुनहली किरणों के आलिंगन से वे धीरे-धीरे अपनी अलसाई आँखें खोल रहे थे। इसी समय गंगा ने देखा—उपवन के द्वार पर दो आगंतुक खड़े हैं। एक वृद्धा स्त्री थी और एक नेत्र-हीन युवक था।

गंगा ने वृद्धा की तरफ़ देखते हुए कहा—"आप किसे खोज रही हैं ?"

वृद्धा ने कहा "किसी को नहीं। थक गई हूँ, इसीलिये यहाँ खड़ी हूँ "

"भीतर चली आओ"—गंगा ने नम्रता-पूर्वक कहा।

"मा, बड़े ही मधुर शब्दों में यह किसने उत्तर दिया है ?" नेत्र-हीन युवक ने कहा।

"इसी उपवन में काम करनेवाली एक युवती है बेटा !"

* * *

दोनो ने उपवन में प्रवेश किया।

थोड़ी ही देर में गंगा के पिता भी आ गए।

उन्होंने वृद्धा से पूछा—"कहाँ जा रही हो ? घर कहाँ है ?"

"उस पार एक वाटिका की मैं मालिन थी, अब नौकरी छूट गई है, उसी की खोज में निकली हूँ। यह मेरा पुत्र है। जन्म-काल से ही नेत्र-हीन है।"

गंगा उन दोनों की तरफ़ सहानुभूति की दृष्टि से देख रही थी।

उसने पिता से कहा—"बाबा, इन्हें अपने यहाँ रख लो न, उपवन में बड़ा काम रहता है। हम लोग उसे पूरा भी नहीं कर पाते।"

गंगा के पिता ने वृद्धा से पूछा—"तुम मेरे यहाँ काम करोगी ?"

"हाँ, मैं और मेरा पुत्र नवल—हम दोनों ही आपके आज्ञानुसार काम करेंगे।"

"बहुत अच्छा"—गंगा के पिता ने कहा।

उसी दिन से नवल और उसकी मा उपवन में रहने लगे।

४

नव से वर्ष की कितनी ही सुकुमार बालिकाएँ गंगा के उपवन में अपना नृत्य दिखलाकर विलीन हो गईं।

उस दिन छोटी-सी कुटी में एक दीपक टिमटिमा रहा था। उसी में नवल की मा रोग-शय्या पर पड़ी हुई थी। नवल, गंगा और उसके पिता उदास बैठे हुए थे। एकाएक वृद्धा ने गंगा के पिता की तरफ़ करुण दृष्टि से देखकर कहा—

"मैं कुछ कहूँ ?"

"हाँ, ख़ुशी से।"

उसने नवल का हाथ उनके हाथों में थमाकर कहा—"मेरे बाद मेरी इस थाती की रक्षा कीजिएगा।"

उन्होंने गंगा का हाथ नवल के हाथों में देते हुए कहा—"कोई चिंता नहीं।"

उसी समय पवन के एक झोंके ने टिमटिमाते दीपक को बुझा दिया। उसी के साथ-साथ नवल की मा ने भी सदा के लिये विदाई ले ली।

उस समय कुटिया में हर्ष और शोक—दोनो ही छा गया।

५

खिले हुए फूलों के साथ खेलनेवाली गंगा अब स्वयं प्रेम की क्यारियों में खिलने लगी। गंगा के पिता ने नवल का विवाह गंगा से कर दिया था।

गंगा की मीठी-मीठी बातें नवल के हृदय को गुदगुदा देती थीं। वह आनंद-मग्न होकर बड़े प्यार से उसे चूम लेता और वह भी गद्गद होकर अपनी बाहु-वल्लियों से उसकी ग्रीवा घेर लेती थी।

नवल का हृदय खिल उठता था—

गंगा का हृदय और नयन-दोनो।

६

एक दिन नवल ने पूछा—"प्रिये, संसार कैसा है ?"

"बड़ा ही सुंदर ।"

"देखने की बड़ी इच्छा होती है । जी मचल उठता है, एक बार आँखें खोलकर इस कोलाहलमय संसार को देखने की बड़ी अभिलाषा है ।"

"क्या करोगे संसार को देखकर ? यह केवल सुंदर ही नहीं, भयंकर भी है ।" गंगा को अपने रूप पर विश्वास नहीं था, उसका हृदय नवल की उत्कंठा से काँप उठा ।

"इसमें कौन-सी सुंदरता है प्रिये !"

"सुंदरता ? सुंदरता—इस पाप-ताप-पूर्ण, कोलाहलमय संसार में नहीं, नहीं, प्रकृति के राज्य में है प्रियतम ! ऊपर लंबा-चौड़ा नीला आकाश फैला हुआ है, उसके वक्षःस्थल पर करोड़ों चमकते हुए तारे, चंद्रमा और सूर्य चंचल गति से नाचा करते हैं । लोग कहते हैं, वहीं आकाश में स्वर्ग है । उस स्वर्ग के नीचे यह, हमारी प्यारी वसुंधरा है, जिसकी गोद में बैठे हुए हम बातें कर रहे हैं । यहाँ पर बगीचों में वसंत आता है, सैकड़ों फूल खिलते हैं, हवा महँक उठती है । यहाँ

सैकड़ों पहाड़ हैं, जहाँ से नदियाँ नाचती, कूदती, हँसती, गाती हमें अपने साथ खेलने को बुलाती हैं।"

"तब तो संसार अवश्य देखना चाहिए प्रिये!"

"कैसे देखोगे प्रियतम?"

"आह प्रिये! इसी संसार में तुम्हारा मुख भी तो है, ईश्वर क्षण-भर को भी आँखें खोल देता, तो उसे देखकर जीवन सफल कर लेता!"

खोज

निर्जन बन था और बीहड़ पथ !!

स्वर्णमयी संध्या आकाश को चूमकर चली गई थी। इस समय तरंगित नीलांबर में उज्ज्वल तारे निर्निमेष पलकों से सुधांशु की प्रतीक्षा कर रहे थे। पर उनका कुछ पता नहीं।

सुनसान अँधेरी रात थी। मैं रह-रहकर इधर-उधर देखने लगता और हृदय चिल्ला उठता—"अभी तो बहुत दूर जाना है।" निदान मैं थककर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया। क्षण-भर विश्राम लेकर फिर चल पड़ा। सैकड़ों जुगनू आशा की स्वर्ण-ज्योति से चमककर मुझे प्रकाश दिखलाने लगे। चारों तरफ़

झनझनझनझन हो रहा था। मेरे पैर काँपते-काँपते ज़मीन पर पड़ते थे; मेरे भय की सीमा नहीं थी।

यह क्या! मैं जिस मार्ग से आ रहा था, वह एकाएक भूल गया, लौटना कठिन हो गया। पूजा की सामग्री मेरे हाथों में थी, उसे सँभाले हुए धीरे-धीरे आगे ही बढ़ चला।

अचानक किसी ने पुकारा—"इस भीषण रजनी में अकेले कहाँ?"

मैंने फिरकर देखा, वह मेरे ही-जैसा कोई व्यक्ति था, पर उस के मुख पर शांति मुसकिरा रही थी।

मैंने कहा—"मैं मार्ग भूल गया हूँ।"

उसने कहा—"कई वर्ष हुए, जब मैं भी पहली बार इधर ही आया था, तो मार्ग भूल गया था।"

"तो क्या आपको वह निर्दिष्ट स्थान प्राप्त हो गया?"

"हाँ, बड़ी साधना और आराधना के बाद।"

"सुना है, वहाँ पहुँच जाने पर मनोकामना पूर्ण हो जाती है!"

"हाँ।"

"तो मेरी भी मनोकामना पूरी होगी? मैंने तो उपासना में बहुत समय बिताया है।"

"जाओ, वहाँ पहुँचने पर ही तुम्हारी उपासना का निर्णय होगा।"

"अभी कितनी दूर जाना है ?"

"थोड़ी ही दूर, इस नदी के उस पार ।"

बातों से हृदय को साहस हुआ, पांव जल्दी-जल्दी उठने लगे। मैं वहां पहुँच ही तो गया। उस तोरण, कलश और बंदनवार से सुशोभित द्वार पर लिखा हुआ था--'प्रेम-मंदिर'।

मेरे पहुँचते ही द्वार खुला, और मैं बेधड़क भीतर चला गया। पूजा समाप्त कर मैंने प्रेमदेव को साष्टांग प्रणाम किया।

उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हें क्या चाहिए ?"

मैंने कहा—"नाथ, केवल एक भिक्षा।"

उन्होंने कहा--"पहले तुम इस मंदिर के सब पुजारियों से भेंट कर लो, फिर तुम जैसा चाहोगे, वैसा ही प्रबंध होगा।"

प्रेम-पुजारियों के दर्शन हुए। कुछ लोग ध्यान में निमग्न थे, कुछ आहें भर-भरकर आँसू बहा रहे थे। सभी का तन जर्जरित और मुख पीला था। आँखों में विफलता बरस रही थी।

उन लोगों को दिखाकर प्रेमदेव ने पूछा—"क्या इस दल में तुम मिलना चाहते हो ?"

मैंने कहा—"यदि शांति मिले, यदि प्रियतम का दर्शन मिले, तो—"

उन्होंने कहा—"तुम अपने प्रियतम को पाकर सुखी न हो

सकोगे। फिर लौटकर वापस आओगे; किंतु यहाँ का नियम है कि दूसरी बार वरदान नहीं मिलता। खूब विचार कर लो।"

मैंने कातर कंठ से कहा—"स्वामिन्, कोई ऐसा वरदान दीजिए, जिससे हृदय को भीषण ज्वाला में पड़कर जलना न पड़े।"

उन्होंने कहा—"अच्छा, तो तुम जिसे चाहते हो, उसे पाने की अभिलाषा कभी मत करना, नहीं तो सब सुख चला जायगा। केवल आराधना करो, उपासना करो, इसी में अक्षय सुख है।"

मैंने कहा—"जो आज्ञा।"

* * *

उस दिन ब्राह्म-मुहूर्त में मैं नदी-तट पर बैठा हुआ प्रेमोपासना कर रहा था। उस समय कनक-किरीटिनी उषा भी शायद किसी की आराधना में लगी हुई थी।

दूर से अचानक किसी के आने की आहट मिली। फिरकर देखा। देखता ही रहा। स्तब्ध हो गया। अवाक् हो गया। चकित हो गया।

एक कोकिल-कंठी ने कहा—"प्रियतम, तुम्हारी विकलता मुझे खींच लाई है। मैं तुम्हारी हूँ, मुझे स्वीकार करो।"

मैंने कहा—"प्रिये, मैं तुम्हें अब नहीं चाहता। तुमने व्यर्थ कष्ट किया - विलंब—अति विलंब।"

"फिर क्या मेरा ध्यान नहीं करते?"

"करता हूँ; किंतु तुम्हें पाने की अभिलाषा पूरी हो गई, तुम्हें पा चुका। तुम लौट जाओ। क्षमा करो।"

सुंदरी ने खिलखिलाकर कहा—"तुम पागल तो नहीं हो गए हो?"

"तो क्या तुम इस पागलपन को भी छीन लेना चाहती हो?"

"अच्छा, मैं फिर आऊंगी, तब तक तुम इस पर विचार कर लेना—"

४ ५ ६

उस दिन से मेरे ध्यान का रूप बदल गया। अब मैं यही सोचता हूँ कि वह आराधना की मूर्ति अब कब आवेगी!

स्वर्ग

१

"वाटिका में सैकड़ों फूल झूम रहे हों, सौरभ के भार से लदी हुई वायु धीरे-धीरे बह रही हो, चारों तरफ चाँदनी छिटकी हुई हो; उस समय में अपने सजीले भवन में गद्दे की स्प्रिंगदार शय्या पर लेटे हुए, अधखुली आँखों से स्वर्णकांति-मयी सुंदरियों का दल देखूँ।—और? और, देखूँ रुनझुन करते हुए उनका चंचल थिरकना। यही मेरी सौंदर्योपासना है।"

मैंने कहा—"भाई मनोहर, यह सब धन की लीला है !"

उसने कहा—"हृदय का खेल है।"

२

उस दिन पूर्णिमा थी। आकाश के नीले सरोवर में पूर्ण चंद्र विकसित कमल की भाँति खिले हुए थे।

महीनों बाद मैं मनोहर से मिलने गया।

उसने स्वागत करते हुए कहा—"अहा, आज बहुत दिनों पर आ तो गए।"

"हाँ" - कहकर मैं बैठ गया।

थोड़ी देर तक बैठे रहने के बाद, मनोहर ने सामने के कमरे का रंगीन पर्दा धीरे से हटा दिया। आश्चर्य! उसकी पूर्व-कल्पना सचमुच आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गई।

बिजली की रोशनी से कमरा जगमगा रहा था। चारों तरफ सुगंधि उड़ रही थी। कितनी ही षोडशवर्षीया कामिनियाँ नाच-गान की तैयारी कर रही थीं। कमरा अभी तक सजाया जा रहा था।

मनोहर ने कहा—"देखो, यही स्वर्ग है। यही सुंदरियों का प्यारा देश है।"



"मैंने देखा, तरला जाने के लिये तैयार थी और मनोहर उसकी विनती करता था।"

मैंने कहा—"हाँ, यह स्वर्ग हो सकता है; यहाँ स्वर्गीय सुंदरता भी है। परंतु शांति ?"

मैं बाहर मे बैठा हुआ, उनका बिजलियों की तरह नाचना देखता रहा—रात-भर मदिरा और नृत्य का समारोह चलता रहा।

चार बज रहा था—कामिनी की भीनी-भीनी महँक से मस्तक भर रहा था—नूपुरों की झनकार पास में सुनाई पड़ी। मैंने देखा—तरला जाने के लिये तैयार थी—और मनोहर उसकी विनती कर रहा था।

मद-विह्वल मनोहर—मान छुड़ाने में असमर्थ हुआ।

तरला चली गई—

मनोहर हताश होकर बैठ गया—जागरण और मदिरा से खिन्न होकर बाहर हरी दूब पर लेट गया—बेसुध !

मैंने ऊपर की ओर आँख उठाकर देखा—अनंत की गोद में सैकड़ों तारों के सहित चंद्रमा शांति से अपना अस्तित्व मिटा रहा था। उसमें भी प्रभात का स्वर्गीय सौंदर्य था।

लीला

९

श्री ने हँसते हुए कहा—"आज आपके गुप्त प्रेम का हाल मालूम हो गया।"

"कैसा प्रेम ?"

"छिपा हुआ, जिसे आप नहीं जानते।"

मैंने श्री की तरफ देखते हुए कहा—"क्या बात है ?—बतलाओ न।"

"कुछ नहीं, लीला आज आपकी बड़ी प्रशंसा कर रही थी।"

"मुझमें कौन-सा ऐसा गुण है, जिसकी कोई प्रशंसा करेगा ?"

"आपके आकर्षण-शक्ति की—"

"क्यों मेरा उपहास करती हो श्री ! मैं तो किसी की तरफ देखता भी नहीं।"

"यदि आपकी तरफ कोई देखे, तो ?"

"तो मैं उसकी तरफ देखने की चेष्टा न करूँगा।"

"रहने दीजिए; ये सब आपकी कोरी बातें हैं।"

कुछ देर तक मैं विचार करने लगा, फिर मैंने पूछा—"वास्तव में बात क्या है ? श्री ! क्या तुम मुझे नहीं बतलाना चाहती हो ?"

श्री ने कहा—"क्या आज तक कभी कोई बात मैंने आपसे गुप्त रक्खी है ? बात यह है कि लीला आपको हृदय से प्यार करती है। आपको देखकर वह खिल उठती है। आपके दर्शन के लिये वह व्याकुल रहती है। वह आपकी आराधना करती है। उपासना करती है। किंतु आप उसे नहीं जानते।"

श्री की बातें सुनकर मैं आश्चर्य-चकित हो गया। मधुर प्रेम की एक लहर ने मेरे हृदय को गुदगुदा दिया। मुझे विश्वास ही न होता कि लीला मुझे चाहती है। लीला शांत एवं सुशील बालिका थी। उसका भोलापन देखकर किसी को भी यह ज्ञात न हो सकता था कि वह प्रेम की रोगिणी है। मकान के समीप होने के कारण कभी-कभी खिड़की

में से लीला और श्री की दो-चार बातें हो जाया करती थीं। दोनों में बड़ी घनिष्ठता थी, अतएव मुझे श्री की बातों का विश्वास करना ही पड़ा।

अब प्रतिदिन लीला का कार्य मेरी समझ में आने लगा। वह प्रायः छत पर बैठी रहती थी। संयोग से यदि मेरा उसका सामना हो जाता, तो वह लज्जा से हट जाती थी, किंतु कई बार मैंने लीला को अपनी तरफ़ देखते हुए पाया था।

श्री ने एक दिन पूछा- "अब आप चिंतित क्यों रहते हैं? क्या लीला के प्रेम ने विकल किया है?"

मैंने कुछ उत्तर न दिया। श्री ने भी आगे कुछ कहना-सुनना उचित न समझा।

२

कई दिन बीत गए।

उस संध्या-समय लीला की एक झलक दिखाई दी। अभी तक तो मैं लीला को देखकर आँखें नीची कर लेता था, किंतु श्री के वार्तालाप से बड़ा साहस हो गया था, अतएव मैंने खुली आँखों से उसकी तरफ़ देखा। वह भी मेरी तरफ़ देख रही थी। आँखें चार हुईं। लीला आकाश की तरफ़

देखती हुई फिर गई। मैं भी अपनी राह लगा। इसी तरह प्रायः मेरी और लीला की भेंट हो जाया करती थी।

दिल में जलन बढ़ गई थी। यदि एक दिन भी लीला को न देख पाता, तो विकल हो उठता। अब मेरी रात इन आँखों में कटने लगी। लीला के प्रेम की तरंगें हृदय में उथल-पुथल मचा देती थीं। मैं यह भले प्रकार जानता था कि लीला का और मेरा प्रेम बड़ा भयंकर होगा। स्थायी न रह सकेगा; कारण, मेरा विवाह हो चुका था। श्री मुझे बहुत चाहती थी। लीला के साथ प्रेम कर श्री के साथ विश्वासघात करना और समाज में कलंकित होना पड़ेगा। किंतु मैं फिर भी अपने को सँभाल न सकता, लीला को देखने की इच्छा मन से हटा न सकता था। समय पर हम एक दूसरे को देख लेते थे।

श्री अब दुखी रहा करती थी। वह मेरे स्वभाव से ख़ूब परिचित थी, अतएव अब उसे भी विश्वास हो चला था कि मैं लीला से प्रेम करता हूँ। अब वह मुझसे लीला के संबंध में कुछ न कहती और मैं भी उसके संबंध में उससे कुछ न पूछता था। इसी तरह कई मास बीत गए।

३

अब लीला दुर्बल हो गई थी। दिन-प्रति-दिन उसका शरीर

सूख्ता जा रहा था। धीरे-धीरे चेहरा भी मुरझा रहा था। उसकी दशा देखकर मेरा दुःख बढ़ने लगा, किंतु करता ही क्या ? विवश था।

उस दिन मेरे घर देवी-पूजा थी। श्री ने लीला को भी निमंत्रण दिया था। लीला आई। मेरे हृदय की विचित्र गति हो गई। मुझे इतनी भी सुधि न रही— मैं कहाँ हूँ, क्या करता हूँ ! मैं बार-बार श्री के पास आता, ताकि लीला को भर आँख देख लूँ। श्री समझ गई। वह लीला को बहलाते हुए मेरे कमरे के समीप ले आई। मुझे यह मालूम नहीं था। मैं यों ही कमरे के बाहर निकला- -देखा, लीला और श्री बातें कर रही हैं। लीला मुझे देखते ही लज्जा से जमीन में गड़ गई। श्री ने कहा—"बहन, लज्जित क्यों होती हो ? उनसे क्या छिपाव है ? वह बड़े भोले हैं, बड़े साधु पुरुष हैं ! किसी की तरफ आँख नहीं उठाते !"

मैं श्री का व्यंग्य समझ गया। कुछ कहना चाहता था, पर साहस न हुआ। कुछ देर तक चुप रहा। फिर मैंने मुसकिराते हुए कहा—"श्री, तुम्हारे साथ यह कौन है ?"

तत्काल श्री ने कहा—"आपकी हृदये......।"

किंतु लीला ने श्री का हाथ दबा दिया और भौंहें चढ़ा लीं मैंने कहा—"श्री, तुम ऐसी बातें क्यों करती हो ?"

श्री ने कहा—"केवल आपकी प्रसन्नता के लिये।"

कुछ देर बाद लीला अपने घर चली गई। चलते समय लीला ने श्री से कहा—"उनसे मेरा प्रणाम कह दो।"

श्री ने कहा—"तुम्हीं कह दो न।"

लीला ने दोनों हाथ जोड़ दिए।

मैंने सिर झुकाकर उसका प्रेमाभिवादन स्वीकार किया।

उसी दिन लीला मेरी आँख बचाकर अपने अंचल में मेरे हृदय को बाँधकर ले गई।

मैंने श्री से कहा—"तुम्हें अपनी चीज यों ही फेंक देते हुए डर नहीं लगा, दुःख नहीं हुआ।" मैं भयभीत था कि यह हँसी कहीं घातक न हो।

श्री ने हँसकर कहा—"चीज तो मेरी ही है। माँगनी चाहे सो कोई ले जा भी सकता है, इसमें कोई हर्ज नहीं—परंतु 'अपना' कहने का दूसरे को अधिकार न होना चाहिए।"

दीप-दान

१

चाची विधवा थीं, धर्म कर्म, में उनकी बड़ी श्रद्धा थी। दिन-रात ईश्वर में लीन रहतीं। पड़ोस के लड़के उन्हें चाची ही कहा करते थे। चाची उन्हें कृष्ण भगवान् की कहानी सुनाया करतीं, प्रसाद देतीं, इसीलिये सब उन्हें घेरे रहते।

अन्नपूर्णा पर चाची का बड़ा स्नेह था। उनके घर का बहुत-सा काम वह कर जाया करती। प्रकाश भी स्कूल से पढ़कर चाची के यहाँ खेलने आया करता। वहीं सायंकाल के समय बालक-बालिकाओं का अच्छा जमाव होता था। चाची के

कोई संतान न थी, इसीलिये सब बालक उन्हीं के थे। वह बाल-लीला देखकर भगवान् का स्मरण करती थीं।

कार्त्तिक में एक मास नित्य चाची गंगा-स्नान करने जाया करती थीं। अन्नपूर्णा और प्रकाश भी कभी-कभी उनके साथ जाते थे। चाची के उठने के पहले ही तीन बजे शिव-मंदिर के घंटे की ध्वनि सुनकर अन्नपूर्णा प्रकाश को उठा देती और कहती—"जल्दी उठो, नहीं तो चाची चली जायँगी।"

स्नान करने के बाद चाची दीप-दान करती थीं। प्रकाश और अन्नपूर्णा भी दिये जला कर गंगा में प्रवाहित करते थे, और अपने-अपने दीपक पर कुछ चिह्न लगाकर उसे अंत तक देखा करते थे।

प्रकाश ने कहा—"देखो अनू, मेरा दीपक आगे चला गया; वह देखो, तुम्हारा दीपक डूब रहा है।"

गंगाजी की लहरें दीपक से कल्लोल कर रही थीं।

अनू कहती—"लो, तुम्हारा दीपक भी बुझ रहा है। वह देखो, कितनी दूर चला गया।"

प्रकाश देखता ही रहा। उसका दीपक आँखों से ओझल हो गया था।

चाची यह दृश्य देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होती थीं और दोनों भाई-बहन को साथ लेकर घर लौट आती थीं।

२

दस वर्ष समाप्त हो गए थे।

पड़ोस के कई मकान गिरकर अब खँडहर हो गए थे। अन्नपूर्णा का विवाह हुआ, फिर प्रकाश का भी विवाह हुआ। सब संसार की चर्खी पर भूल रहे थे!

प्रकाश ने अब विद्वान् और गृहस्थ होकर संसार में प्रवेश किया था। प्रकाश की स्त्री बड़ी सुंदर और सुशीला थी। कई वर्षों के बाद एक पुत्र भी हुआ।

बड़े आनंद से दिन कट रहे थे।

अनू भी साल-छ महीने में आती और कुछ दिनों के लिये मेहमान होकर चली जाती थी।

दैव की लीला! प्रकाश बीमार पड़ा, फिर रोग-शय्या से न उठा। भरी जवानी में चल बसा। सब उसके लिये आँसू बहाते।

वह सरल था, नम्र था और होनहार था, इसीलिये उसका अभाव खटकता था।

३

बहुत समय बीत गया।

अन्नपूर्णा घर आई थी। कार्त्तिक मास था। चाची अब

बहुत वृद्धा हो गई थीं, पर गंगा-स्नान करने आया करती थीं। एक दिन अन्नपूर्णा चाची के घर गई थी। विगत जीवन का वार्तालाप होता रहा। चाची ने कहा—"अनू, तेरे साथ स्नान हुए कितने वर्ष हो गए—तुझे याद है ?"

अनू ने आह भरते हुए कहा—"वे दिन चाची, क्या भूलेंगे ? किए कितना मधुर समय था !"

"अच्छा, चल एक दिन मेरे साथ स्नान तो कर ले। कल एकादशी है।"—चाची ने आश्वासन देते हुए कहा।

दूसरे दिन अन्नपूर्णा अपने भाई के लड़के अरुण को लेकर चाची के साथ स्नान करने गई। घाट अब भी वैसा ही था। आकाश-दिये अब भी उसी तरह लगे थे। गंगा-तट पर एक स्त्री दीप-दान के लिये सजाया हुआ दीपक बेच रही थी।

चाची ने सदा की भाँति दीप-दान के लिये दीपक ले लिया। बालक अरुण आश्चर्य से पूछने लगा—"यह क्या है चाची ?"

"दीप-दान के लिये दीपक है बेटा !"

"क्या होगा ?"

"चलो देख लेना, गंगाजी में बहाया जायगा।"

अन्नपूर्णा मूर्ति के समान खड़ी थी। किसी पीड़ा ने कुछ देर के लिये उसके हृदय में डेरा डाला। उसका दम घुटने

लगा। बड़ा साहस करके उसने भी एक दीपक लेते हुए कहा—"चाची, मैं भी दीप-दान करूँगी।"

स्नान करने के पश्चात् अनू ने दीपक का प्रवाह किया। अरुण कौतूहल से देख रहा था।

तारे आकाश से एक-एक कर नष्ट हो रहे थे। दीपक बड़े वेग से बहे जा रहे थे। अनू चुप थी, उसे दीपक की मलीन ज्योति में दिखलाई दिया जैसे प्रकाश का छाया-चित्र आकाश की तरफ़ उठ रहा है।

सहसा अरुण ने आश्चर्य से कहा—"बुआ, हो देखो, तुम्हारा दीपक डूब रहा है।"

अनू ने देखा, दीपक दूर श्मशान के सामने तक पहुँच गया था, और एक लहर ने दीपक को छिपा लिया।

दीपक का मंद प्रकाश श्मशान की अग्नि की लपटों में विलीन हो गया।

अन्नपूर्णा को चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश दिखलाई दिया।

समाधि

१

बहुत दिनों बाद वह संन्यासी लौटा था। एक समाधि की छाया में खड़ा होकर वह विश्राम लेने लगा। वह बहुत थका हुआ था।

वह उसी की प्रतिमा थी। उसने देखा, संगमर्मर की वह समाधि जैसे हँसने लगी। वह भावों की उद्विग्नता में, प्रतिमा को संबोधन कर, कहने लगा—तुम पाषाण हो, तुम कैलास की प्रतिमा बन गए हो, तुम्हारे रूप और बाहरी आवरण में कोई अंतर नहीं है, किंतु तुम्हारे पास हृदय नहीं! तुम रोना नहीं

जानते, तुम अट्टहास नहीं कर सकते, तुम्हें किसी प्रसन्नता और पीड़ा का अनुभव नहीं !! संसार के सब सुख हमसे थक-कर चले जाते थे, उन्हें स्थिर न कर सका। इस शरीर पर बड़ा ममत्व था। इसी के स्मृति-स्वरूप, अपने मोह को स्थिर रखने के लिये, तुम्हें बनवाया ; परंतु तुम शरीर-ही-शरीर रहे ! तुम्हारे भीतरी स्पंदन नहीं, उच्छ्वास नहीं; तुम्हें आँसू बहाना नहीं आता !

किंतु प्रतिमा उसी तरह मौन थी।

संन्यासी उसी दिन से पर्यटन छोड़कर अपनी ही समाधि का पुजारी बन गया। उसके मन में यह बात समा गई कि देखूँ कोई भी मेरी समाधि पर आकर आँसू बहाता है या नहीं ?

संन्यासी के वहाँ रहने से गाँव के लोग उसे कोई शक्ति-शाली देवता समझकर कभी-कभी उस प्रतिमा की पूजा, भेंट करने आने लगे। वन के फल-फूल उसकी भूख शांत किया करते। किसी तरह संन्यासी का जीवन निर्वाह होने लगा। फिर भी, बहुधा, मनुष्यों की दृष्टि से वह अपने को बचाता था। किसी परिचित को देखता, तो पत्तों की घनी हरियाली में छिप जाता था।

बहुत दिन व्यतीत हो गए।

२

लता उसी गाँव की लड़की थी। उसका ब्याह नगर में एक सुशिक्षित युवक से हो गया था। किंतु वह प्रायः बीमार ही रहा करती। उसकी मा ने उसे बुला भेजा था समाधि की पूजा करने के लिये। क्योंकि उस योगी की विभूति से कल्याण-प्राप्ति में उसे दृढ़ विश्वास था।

उस दिन लता अपनी एक सखी और माता के साथ, माधवबन के समीप, समाधि के पास आई। बहुत दिनों पर लता ने देखा कि कैलाश की मूर्ति जैसे उसे प्रत्यक्ष दिखलाई दी। वह बड़े ध्यान से देखने लगी। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

लता की सखी कुंती कुछ भी न समझ सकी। उसने पूछा—लता, कैसी तबियत है? मुख उदास क्यों है?

लता की मा उस समय समाधि की पूजा कर रही थी।

कुंती ने बार-बार ज़िद करके पूछा—लता, इतनी शिथिल क्यों हो रही हो? कुछ बोलो।

उसने एक ठंडी साँस लेकर कहा—कैलास इस प्रांत का एक धनी व्यक्ति था। सुखों की खोज में, विलास की लालसा में, वह सदैव अतृप्त रहा। यही उसकी फुलवारी थी। मैं भी

एक दिन उसमें फूल चुनने आई, मैं तब अपने को बालिका ही समझती थी। विलासी कैलास एकांत पाकर, मुझे रोककर, कहने लगा—लता, तुम तो अब सयानी हो चली हो!

मैं भयभीत हुई, क्योंकि कैलास के नाम से गाँव की स्त्रियों में सनसनी का संचार हो जाता था। मैंने कहा—आप मुझसे न बोलिए; मैं शपथ खाती हूँ। आपकी फुलवारी में न आऊँगी।

कैलास ने कहा—क्या मैं पिशाच हूँ? तुम इतना डरती क्यों हो?

मैं अज्ञान थी। मैंने कहा—तुम इतने बदनाम क्यों हो?

वह सामने घुटनों के बल बैठकर कहने लगा मैं सच्चरित्र होने का आज मैं प्रण करता हूँ, यदि तुम मुझ से विवाह करने की प्रतिज्ञा करो। लता, यदि तुम्हारे-ऐसा निर्मल-हृदय मुझे मिला होता, तो मैं इतना घृणित न होता। मैं बड़ा अभागा हूँ। आह! मेरे लिये संसार में कौन आँसू बहावेगा? कोई नहीं।

न-जाने क्यों मैंने उसे उत्तर दिया—जब तुम किसी के लिये आँसू नहीं बहाते, दूसरों के आँसू पर हँसते हो, तो फिर तुम्हारे लिये कौन आँसू बहावेगा?

मैंने देखा, कैलास अचानक किसी निगूढ़ विचार-धारा में

डूब गया है, थोड़ी देर बाद वह पश्चात्ताप के आवेग में कहने लगा--लता, तुमने मेरी आँखें खोल दीं! क्या वास्तव में एक दिन इस जीवन का अंत हो जायगा! ओह, इस समाज में मृत्यु के पश्चात कोई चिह्न भी तो नहीं रह जाता। यहाँ तो लोग जलाकर राख कर देते हैं। फिर संसार में आने का रहस्य क्या है। मैं रहस्य को खोजूँगा। जाओ लता, मुझे क्षमा करो।

कुंती कुतूहल से सुन रही थी।

इसके बाद मैंने सुना कि कैलास का रहन-सहन बदल गया है। उसे संसार के प्रति निराशा होते हुए भी एक कुतूहल-सा था। मैं उसे दूर से देखती। वह बहुत बदल गया था। जैसे उसके हृदय में वासना और त्याग का द्वंद्व मचा हुआ था।

३

दूर देशों से शिल्प-कला के कुशल कारीगर बुलाए गए। कैलास के इसी विलास-कानन में उसकी स्मृति-चिह्न के लिये यही उसकी प्रतिमा स्थापित हुई। विलास से बचा हुआ सारा धन उसने इसमें लगा दिया, और फिर तीर्थ-यात्रा का निश्चय किया। यह समाचार सुनकर सब मित्र, संबंधी और परिचित

उससे मिलने के लिये गए। पर मैं न गई। वही बात आज सहसा स्मरण हो आई थी।

कुंती विचार में लीन हो गई थी। उसने रहस्यमय दृष्टि से लता की ओर देखते हुए कहा—उसके संबंध में मुझे बहुत थोड़ा मालूम था। मेरा विवाह हो गया था, और मैं यहाँ से चली गई थी।

लता की आँखें डबडबा गई थीं।

कुंती ने उसकी पीठ थपथपाकर कहा—लता, तुमने भूल की। तुम्हारे हृदय में उसके प्रति घृणा न थी। वह प्रेम था।

लता नत-शिर हो गई।

इतने में लता की मा पूजा और प्रार्थना करके उसे पुकारने लगी।

माता ने कहा—लता, योगी तो आज नहीं है, तुझे आशीर्वाद कौन देगा? आओ चलें, फिर किसी दूसरे दिन आवेंगे।

योगी झाड़ी में बैठा हुआ ध्यान से यह दृश्य देख रहा और उनकी सब बातें सुन रहा था। उसकी अभिलाषा हुई कि इस बार अपने को प्रकट कर दे। उसने सोचा, यह कैसा रहस्य है कि जीवन के प्रत्यक्ष में जो नहीं आता, वह बाद में आकर आँसू बहाता है।

अब वह अपने को न रोक सका, और सामने आकर खड़ा हो गया। सबने भक्ति-सहित नमस्कार किया। योगी ने कहा – लता, तुम्हारे उस दिन न आने से हमारी यात्रा खंडित रही, और मुझे लौटकर फिर इस समाधि पर आना पड़ा। तुम सुखी रहो। मैं अब कभी न लौटने के लिये फिर जाता हूँ।

आश्चर्य और कुतूहल से लता की मा के हाथ से पूजा के सामान छूट पड़े। उसके मुँह से निकल पड़ा – अरे, यह तुम्हीं हो कैलास !
